UNIVERSAL LIBRARY
OU_178767
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/J83A Accession No. G.H. 781

Author जोशी, इलाचन्द्र।

Title आहुति। 1948

This book should be returned on or before the date last marked below.

आहुति

(कहानी संग्रह)

इलाचन्द्र जोशी

नेशनल इन्फ़रमेशन एण्ड पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई.

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १९४८.

मूल्य : २।)

नेशनल इन्फ़रमेशन एण्ड पब्लिकेशन्स लिमिटेड, नेशनल हाउस, ६, तुलक रोड, अपोलो बंदर, बम्बई-१, के लिए कुसुम नैयर द्वारा प्रकाशित और मदनलाल अग्रवाल द्वारा नवराष्ट्र प्रेस, २३, हमाम स्ट्रीट, फोर्ट-बम्बई, में मुद्रित.

॥ अनुक्रमणिका ॥

कहानी			पृष्ठ संख्या
१. आहुति	...	...	१
२. फोटो	...	...	१६
३. प्लैनचेट	...	...	३७
४. चार आने पैसे	...	...	४९
५. दो मित्र	...	...	६२
६. सरदार	...	...	७३
७. चौथे विवाह की पत्नी		...	८८
८. प्रेतात्मा	...	...	१०४

आहुति

लखनऊ के चारबाग स्टेशन पर जब पंजाब मेल पहुँची, तो प्लेटफ़ार्म पर एक बहुत बड़ी भीड़ खड़ी थी। जब गाड़ी से उतरनेवाले यात्री अपना सामान कुलियों के हवाले कर बाहर निकलने की उतावली दिखाने लगे तो टिकट-चेकर बहुत परेशान हो गया। फिरभी उसने अपने कर्तव्य में ज़रा भी ढिलाई नहीं दिखाई और आगे बढ़नेवाले यात्रियों को पूरी ताकत लगाकर अपनी वज्र-मुष्ठि से रोककर वह एक-एक करके सबके टिकट चेक करने लगा। एक लम्बे क़द के चश्माधारी सज्जन इस इन्तज़ार में खड़े थे कि ज्योंही कुछ भी मौक़ा मिले तो वह टिकट दिखाकर बाहर निकल जायँ। वे एक रेशमी कुर्ता और मल-मल-नुमां बारीक कपड़े की धोती पहने थे, और ऊपर रेशम का चद्दरा डाले हुए थे। टिकट चेकर एक देहाती बूढ़े को, जो पहनावे से एक ग़रीब किसान मालूम होता था, इस बात के लिए तंग कर रहा था कि उसने अपने साथ के एक छोटे-से बच्चे का टिकट क्यों नहीं लिया? चश्माधारी सज्जन फाटक के बाहर निकलने के लिए अधीर होने पर भी उस तकरार में काफ़ी दिलचस्पी ले रहे थे, और मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। इतने में एक व्यक्ति उसी भीड़ के भीतर से चुपके-से कुछ आगे बढ़ा और उन्हीं चश्माधारी बाबू साहब के पीछे खड़ा हो गया। उसने क्षण भर के लिए एक बार चारों ओर नजर दौड़ायी और उसके बाद बिजली की-सी शीघ्रता से, पलक मारते-न-मारते बड़ी सफ़ाई से एक दम बे-मालूम ढंग से बाबू साहब के रेशमी कुर्ते की [illegible]ई जेब में से काले रंग के चमड़े का बटुवा

निकाल लिया और निकालते ही वह उसी फुर्ती और सफ़ाई से भीड़ के भीतर ग़ायब हो गया !

ग़ायब होने के कुछ ही देर बाद, वही व्यक्ति भीड़ से बाहर निकला। उसकी अवस्था प्राय: चौबीस-पचीस वर्ष की होगी। वह काले रंग का बहुत मैला सफ़ेद मार्कीन का उतना ही मैला कुरता और लांगक्लाथ का उन दोनों चीज़ों से भी अधिक मैला पायजामा पहिने था, पाँवों में उसके फटे-पुराने चप्पल थे और नंगे सिर के रूखे बालों पर दुनिया भर की गर्द जमा थी, उसके सत्वहीन, मुरझाये और चीमड़ चमड़े का रंग गेहुआँ था। उसकी आंखों में कभी एक भ्रांत और शंकित भाव अभिव्यक्त होता था, कभी एक उन्माद ग्रस्त व्यक्ति की सी उत्तेजना, घोर घृणा और तीव्र व्यंग का सम्मिलित आभास। जब उसके मुँह पर और आंखों में घृणा और व्यंग का वह निश्चित भाव उमड़ आता था, उस समय ऐसा जान पड़ता था जैसे सारे संसार के प्रति एक भयंकर प्रतिहिंसा उसके मन के बहुत भीतर, गहराई में, जड़ जमाये हुये है। उस समय सम्भवत: वह अपने अनजान में यह सोचता था कि वह संसार में सबसे अधिक सताया हुआ व्यक्ति है और जिन अज्ञात व्यक्तियों अथवा अज्ञात समाज ने अज्ञात ही रूप से उसे सताया है उनसे हर हाल्त में बदला लेना ही होगा। साथ ही अपने अनजान में उसे सम्भवत: यह विश्वास भी था कि एक न एक दिन उन अज्ञात व्यक्तियों अथवा अज्ञात समाज पर वह विजय प्राप्त करके ही रहेगा। वे काल्पनिक अथवा वास्तविक व्यक्ति कौन हैं, और कैसे उन पर वह विजय पायेगा, इस सम्बन्ध में तो उसके चेतन मन ने कभी विचार न किया होगा, न अवचेतन मन ने ही ; क्योंकि यदि उसने कभी इस तरह का विचार किया होता तो उसके मुख पर अधिकांशत: जो दीन और संकुचित भाव, जो भीत और शंकित अभिव्यक्ति पाई जाती थी वह उतने तीव्र रूप में परिस्फुट न हुई होती !

भीड़ से बाहर निकल करके वह पुल से होकर दूसरे प्लेटफ़ार्म पर चला गया

और वहां से और एक पुल पार करके तीसरे प्लेटफार्म पर जा पहुँचा। वहां से वह उल्टे-सीधे चक्करों के बाद स्टेशन से बाहर निकल गया। उसके बाद पैदल चलकर गणेशगंज पहुँचा। वहां वह एक ऐसी दूकान के भीतर चला गया जो देखने में छोटी और बहुत गंदी थी, पर जहां भीतर बहुत से व्यक्ति, विशेष करके निम्न श्रेणियों के व्यक्ति—गंदे बेंचों पर बैठकर तनमय भाव से खाना खा रहे थे। वह गिरह-कट भी उन्हीं लोगों के बीच में एक स्थान पर बैठ गया। उसने कुछ चपातियां, दाल और सब्ज़ी के लिये आर्डर दिया। जब थाली आ गई तो मनोयोग के साथ उसने खाना शुरू कर दिया। उसके खाने के ढंग से मालूम होता था कि उसे बड़ी ज़बरदस्त भूख लगी है। सम्भवत: कई दिनों से उसे भर पेट भोजन करने की सुविधा प्राप्त नहीं हुई थी।

खूब डटकर भोजन कर चुकने के बाद उसने अपनी जेब से वही बटुवा निकाला, जिसे उसने स्टेशन में "तिड़ी" किया था। बटुवे को खोलकर देखने की सुविधा उसे अभी तक नहीं हुई थी। उसके भीतर हाथ डालने से मालूम हुआ, नोटों का एक काफ़ी बड़ा पुलिन्दा उसमें है। वह मन ही मन अत्यन्त पुलकित हो उठा। उसने दूकान में भी नोटों का गिनना सुरक्षित नहीं समझा और उनमें से केवल एक नोट बाहर निकाला, जो पांच का था। उसे दूकानवाले को देकर बाकी पैसे वापस लेकर बटुवे को बन्द करके जेब के भीतर सिली हुई एक दूसरी जेब में डालकर वह बाहर निकला।

वहां से अमीनाबाद की तरफ़ गया। बिना इधर-उधर भटके एक निश्चित दूकान की ओर उसके कदम बढ़ते चले गये। दूकान के पास पहुँचकर वह कुछ देर के लिये बाहर 'शोविण्डो' के पास खड़ा हो गया वह बनारसी साड़ियों की दूकान थी। रेशम के बारीक और रंग-बिरंगे कपड़े के ऊपर तरह-तरह की 'डिज़ाइनों' में ज़री का काम किया गया था। वह प्राय: प्रति दिन इस दूकान के पास एक बार खड़ा हो जाया करता था, और उसकी बिलखती हुई आंखें 'शो-

विण्डों, में सजाई गई उन चित्र विचित्र और रात के बिजली के प्रकाश में झलकती हुई साड़ियों को एक-टक देखती रहती थीं। उनमें से मटमैले रंग की एक विशेष साड़ी उसे खासतौर से पसन्द थी। पता नहीं, तरह-तरह के चटकीले रंगों की साड़ियाँ रहते हुए, उसे मटमैले रंग के प्रति ही विशेष आकर्षण क्यों था; क्या उसके अपने मैले कपड़ों ने रंगों के चुनाव के सम्बन्ध में उसके मनोभाव को भी धुमला कर दिया था? यह बात ध्यान देने योग्य है कि वह वर्षों से मैले कपड़े पहनने का आदी हो गया था। उसका कारण गरीबी उतनी नहीं थी, जितनी उसके भीतर के एक अनोखे जड़ताग्रस्त भाव।

'शो-विण्डो' के पास कुछ देर खड़ा रहने के बाद वह दूकान के भीतर गया, और दूकान के एक आदमी को बाहर बुला लाया। उसे मटमैले रंग की वह साड़ी उसने दिखायी और उसका दाम पूछा। मालूम हुआ कि उसका मूल्य ६५) रुपये है। क्षण भर के लिये गिरहकट शायद हिचकिचाया। उसके बाद उसने कहा—'अच्छी बात है, इसे निकालकर मुझे दे दो।'

दूकान के आदमी ने साड़ी निकालकर एक कागज़ में लपेटकर उसके हाथ में दे दी। गिरहकट ने बटुवे से दस-दस के छः नोट और पाँच का एक नोट निकालकर दूकानदार को दे दिये और एक झलक देखकर और शेष पुलिन्दे की मोटाई से अन्दाज़ा लगाकर उसे मन ही मन वहुत सन्तोष हुआ कि अभी काफ़ी बड़ी रक़म बची है। अमीनाबाद से वह चौक को जानेवाले एक इक्के पर सवार हुआ और बीच ही में उतर गया। उतरकर वह वहीं एक कच्चे मकान के दरवाज़े के निकट जाकर खड़ा हो, उसे खटखटाने लगा। थोड़ी देर में दरवाज़ा खुला। एक बुढ़िया जिसकी कमर झुकी हुई थी और सारा शरीर कांप रहा था, दैत्य और दरिद्रता की साक्षात् प्रतिमा-सी सामने आई। गिरहकट को अत्यन्त निकट से देखकर कांपती हुई आवाज़ में रुक-रुककर बोली—कौन रामनाथ! आओ बेटा, आओ! आज फिर दमे के दौर से मेरा बुरा हाल है, पर वह तो रोज़ की शिकायत

है...एक रोटी के लिये आटा बचा हुआ था उसी को सान रही थी, पर दाल के नाम पर नमक भी नहीं है—बाबूलाल तीन दिन से नौकरी के लिये भटक रहा है, कहीं नहीं मिलती। महँगी, तिस पर बेकारी...मर नहीं पाती बेटा..."

"अम्मा, घबराओ नहीं, समय सब ठीक हो जायगा। यह लो—कहकर गिरहकट—रामनाथ—ने बटुवे से दस-दस के तीन नोट निकालकर बुढ़िया के हाथ में रख दिया।

"बाबूलाल से फिर मिलूंगा। अभी इतने से खर्चा चलाना। अच्छा, इस समय जाता हूं, अम्मा!"

बुढ़िया आंखों में आँसू भर लायी, वह आशीर्वाद के रूप में कुछ कह रही थी, पर रामनाथ बिना कुछ सुने ही तेज़ी से चला गया।

वहां से दाहने हाथ की ओर मुड़कर, प्रायः आधे मील तक वह पैदल चला। उसके बाद एक गली के भीतर दूसरे मकान में आकर खड़ा हो गया। मकान पक्का और दुमंज़िला था। पीले रंग की नयी पुताई के कारण बाहर से काफ़ी साफ़ सुथरा दिखायी देता था। रामनाथ ने बाहर से दरवाज़ा खटखटाया। भीतर से एक अधेड़ महिला-कण्ठ से आवाज़ आयी—'अच्छा!'

थोड़ी देर बाद दरवाज़ा खुला। अधेड़ अवस्था की एक देशी ईसाई महिला गाउन पहने खड़ी थी। वह काफी मोटी थी और रंग उसका एंजिन में झोंके जानेवाले कोयले की तरह था। रामनाथ के हाथ में कागज़ में लपेटी हुई कोई चीज़ देखकर उसके मुख पर कुछ उत्सुकता और कुछ प्रसन्नता का भाव झलक उठा, बोली—"वह क्या लाये हो?"

रामनाथ ने कहा—"पहले भीतर चलो, मदर! मैं बहुत थका हुआ हूँ।" यह कहकर वह भीतर की ओर बढ़ा, और फिर जीने से होकर ऊपर चढ़ गया। 'मदर' भी हांफती हुई उसके पीछे-पीछे सीढ़ियां चढ़ने लगी।

ऊपर जाकर रामनाथ एक छोटे-से कमरे के भीतर पड़ी हुई खटिया के ऊपर

लेट गया। कागज़ का बण्डल उसने सिरहाने के पास रख दिया। कुछ देर बाद जब अधेड़ ईसाई महिला हांफती हुई ऊपर आयी तो आते ही वह बण्डल को पकड़ने के लिये झपटी, पर रामनाथ ने उसे तत्काल उठाकर दूसरी ओर रख दिया। महिला के मुख पर क्रोध का-सा भाव व्यक्त हो उठा। उसने कहा—"देखने क्यों नहीं देते?"

रामनाथ उठ बैठा और तमककर बोला—"मेरे आने पर तुमने यह भी पूछा कि मैंने खाना खाया है, या नहीं? मेरी तबियत का क्या हाल है, यह भी तुमने नहीं जानना चाहा। बस आते ही लगीं बण्डल पर झपटने! तुम्हें आज-कल हो क्या गया है, मदर एली...वह कहने जा रहा था, "मदर एलीफैंटा!" महिला के हाथिनी के समान भारी भरकम शरीर को देखकर रामनाथ ने अपने मन में उसका यही नाम रख लिया था, पर प्रकट में उसे कभी परिहास में भी इस नाम से पुकारने का साहस नहीं हुआ था। ईसाई महिला मदर एलिज़ाबेथ के नाम से विख्यात थीं। रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के किसी 'कानवेन्ट' से सम्भवतः किसी ज़माने में उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध था। उनके पूर्व पुरुष गोआ के निवासी थे।

रामनाथ मन-ही-मन उनके भयंकर रूप से असन्तुष्ट रहने पर भी बाहर उसके प्रति उसने कभी इस प्रकार के आक्रोश का भाव प्रकट नहीं किया था। आज आकस्मात् उसकी आंखों में तीव्र हिंसक भाव देखकर मदर एलिज़ाबेथ क्षण भर के लिये कुछ सहम गयीं; पर तुरन्त ही उन्होंने अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया, और कुछ तीखे स्वर में बोलीं—"खैर इन सब फ़िज़ूल की बातों को जाने दो। यह बताओ कि तुम आज मेरा बिल चुकाने जा रहे हो, या नहीं? दो महीने से तुमने न खाने का बिल चुकाया है, न किराये का, और इधर बण्डल पर बण्डल ख़रीदते जाते हो!" रामनाथ उनकी इस शिकायत से अन्य-मनस्क-सा हुआ, और मौक़ा देखकर मदर एलिज़ाबेथ ने चील की तरह बण्डल

पर झपट्टा मारकर उसे उठा लिया और फिर कुछ पीछे हटकर उसे खोलकर देखने लगीं।

"यह क्या करती हो ? यह क्या करती हो ?" कहकर रामनाथ खटिया से उठकर उनके पास गया।

मदर ने इस बीच बाहर का कागज़ हटाकर देख लिया था कि उसके भीतर क्या चीज़ है। देखकर उन्होंने उसे फिर अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया और व्यंग के साथ कहा—"समझी! वह उसी छोकरी के लिये है, और इधर बुढ़िया के लिये कुछ भी नहीं! ५०—६० रुपये से कम की चीज़ नहीं है। पर अब हवा खाओ, मिस्टर! जब तक मेरा बिल नहीं चुकाते, तब तक यह चीज़ तुम्हें वापस नहीं मिलने की! मेरे यहां कोई सदावृत नहीं खुला है जो मैं तुम्हें दो-दो महीने तक मुफ़्त में खाना खिलाती रहूं।"

रामनाथ के भीतर किसी ने विकट अट्टहास किया। हफ्ते में दो दिन भी वह मदर एलिज़ाबेथ के यहां खाना नहीं खाता था और दो दिन भी जब खाता था तो उसे अधपेट खाकर ही रह जाना पड़ता था।

सहसा रामनाथ के भीतर बहुत दिनों से दबी पड़ी हिंसक प्रवृत्ति पूरे वेग में उमड़ उठी। क्रोध से अन्धा होकर अपनी जेब में हाथ डाला और उसके भीतर जो एक चाकू उसके पास सब समय रहता था, उसे उंगलियों से सहलाने लगा। मदर की तत्कालीन असावधानी के क्षण में, उस चाकू को उसकी छाती पर पूरी गहराई से भोंक देने की प्रवृत्ति उसके भीतर अत्यन्त प्रबल हो उठी। क्षण भर के लिये वह बाह्य-ज्ञान से एक दम शून्य हो गया। उसने धीरे से चाकू बाहर निकालना चाहा।

रामनाथ के चारों ओर जैसे सघन अन्धकार छा गया और प्रकाश की एक मात्र क्षीण रेखा उसके लक्ष्य पर—उसके सामने खड़ी, उस स्थूलकाय और कृष्ण-मुखी, अधेड़ क्रिश्चियन महिला के ऊपर पड़ी हुई सी मालूम होती थी। अपने घातक उद्देश्य की पूर्ति की ओर वह क़दम बढ़ाना ही चाहता था कि सहसा एक

विकट अट्टहास आकाश से फट पड़ा, और रामनाथ जैसे घोर दुःस्वप्न से चौंक गया। उसके हाथ का चाकू उसके कांपते हुए हाथ से नीचे गिर गया। उसे उठाने के पहले उसने देखा कि मदर एलिज़ाबेथ बनारसी साड़ी को तह खोल देख रही हैं और किसी अज्ञात कारण से वह अट्टहास कर रही हैं। उसने रामनाथ को चाकू निकालते हुए नहीं देखा था। रामनाथ ने फुर्ती से चाकू उठाकर जेब में रख लिया। अपना घातक स्वप्न जो सम्भवतः दूसरे क्षण वास्तविकता में परिणत हो सकता था—दूर जाने पर उसने चैन की एक लम्बी सांस ली; पर साथ ही उसके भीतर एक विचित्र बेचैनी की अज्ञात लहर-सी उठने लगी, जैसे उसके मन को किसी नस की ऐंठन दूर करने के लिये किसी ने ज़ोर से झटका देकर उसे खींच दिया हो।

जब वह सँभला तो उसने मदर से कहा—वह साड़ी मुझे दे दो, मदर! मैं तुम्हारा बिल अभी चुकाये देता हूं।

"तब लाओ, अभी चुकाओ"—मदर ने बड़ी फुर्ती से दो क़दम आगे बढ़ते हुए कहा।

"पहले यह साड़ी मेरे हाथ में दो। रामनाथ को यह विश्वास ही नहीं हो पाता था कि बिल चुकाये जाने पर भी मदर वह साड़ी उसे वापस करेगी। साथ फिर उसे यह संदेह भी था कि ठीक उसी जोड़ की, उसी रंग की और उसी ढंग की दूसरी साड़ी बाज़ार में ही मिल सकेगी। इतने दिनों बाद उसके मन की एक साध मुश्किल से पूरी हो पाई थी। क्या यह हस्तिनी इसमें भी बाधा डालेगी? उसने मदर के हाथ से साड़ी छीनने की चेष्टा की, पर मदर ने और ज्यादा मजबूती से पकड़कर हाथ हटा लिया।

दोनों के बीच छीना-झपटी चल ही रही थी कि नीचे जोने पर किसी के जूतों का मचमचाना सुनाई दिया। रामनाथ ने दरवाज़े की ओर देखा तो ठिठक कर रह गया। प्रायः २५-२६ वर्ष की एक सांवले रंग की युवती नर्स के कपड़े

और ऊंची एडीवाला जूता पहने कमरे में पहुँची। मदर ने, युवती को देखते ही त्योरी चढ़ाते हुए कहा—"देखती हो मार्था इस बदमाश को! यह मेरे साथ हाथापाई करने को तैयार है!

मार्था ने एक बार तीखी दृष्टि से रामनाथ की ओर देखा और फिर मदर की ओर। स्पष्ट ही उसकी समझ में कोई बात नहीं आ रही थी। उसने अत्यन्त गम्भीर भाव से, बड़ी धीमी आवाज़ में रामनाथ की ओर देखकर कहा—"क्यों रामनाथ, बात क्या है?"

रामनाथ चोरों की-सी शक्ल बनाते हुए बोला—कुछ नहीं मार्था, मदर ने मेरी साड़ी छीन ली है, मैं उसी को वापस चाहता था।

तुम्हारी साड़ी! तुम किसके लिये···देखूं, मदर, वह कैसी साड़ी है।

मदर ने कहा—"बढ़िया बनारसी और तुम्हारे ही लिये है—क्योंकि मेरे लिये तो हो नहीं सकती; पर मैं तब तक इसे किसी को न दूंगी, जब तक रामनाथ मेरा बिल नहीं चुकाता।"

रामनाथ ने तत्काल अपनी जेब से बटुआ निकालकर उसमें से दस-दस के पाँच नोट बाहर निकाले, और उन्हें मदर की ओर बढ़ाते हुए बोला—"यह लो, और मुझे साड़ी दो!"

मदर ने फिर एक बार चील की तरह झपट्टा मारकर रुपये रामनाथ के हाथ से छीन लिये और उन्हें एक बार गिनकर मुख पर अत्यन्त प्रसन्नता का भाव झलकाती हुई बोली—"गुड! यू आर ए डार्लिंग! यह लो अपनी साड़ी, मुझे इसकी जरूरत नहीं।" यह कहकर उसने साड़ी को सामने की एक मेज़ पर पटक दिया।

मार्था ने साड़ी को उठाकर बड़े गौर से, परीक्षक की तरह देखा। क्षण भर के लिये उसके मुख पर मुस्कान की एक किरण दौड़ गई; पर तत्काल वह मुस्कान घनी काली छाया में बदल गयी। उसने साड़ी को उठाकर मेज़ पर रख दिया और मर्म के भीतर पैठनेवाली दृष्टि से रामनाथ की ओर देखती हुई

बहुत ही धीमी, किन्तु सितार के कसे हुए तार की तरह झंकृत होनेवाली आवाज़ में बोली—"यह साड़ी कैसे—किसके लिये लाये हो ?"

रामनाथ ने फिर चोरों का-सा मुँह बनाकर कहा—"मदर ने ठीक ही कहा है, मार्था, यह तुम्हारे ही लिये......"

"ओह !, कहकर पहले से भी गम्भीर मुद्रा बनाकर मार्था भीतर चली गयी। रामनाथ भी चुपचाप अपने कमरे में चला गया। थोड़ी देर बाद मार्था कपड़े बदलकर रामनाथ के कमरे के दरवाज़े के पास खड़ी हो गयी। इस बार वह एक नीले रंग की साड़ी पहने थी। रामनाथ को मर्था का साड़ीवाला पहनावा बराबर अत्यन्त मोहक लगता था। वह भीतर ही भीतर एक आह भर-कर रह गया।

मदर ने नीचे से मार्था को पुकारकर कहा—"मैं बाहर जा रही हूँ। कुछ ज़रूरी चीज़ खरीदनी हैं। नीचे दरवाज़ा खुला है, बन्द कर लेना।"

मार्था नीचे गयी और मदर के चले जाने पर भीतर से दरवाजा बन्द करके ऊपर चली आई। वह फिर रामनाथ के दरव . के पास खड़ी हो गयी। फिर एक बार उसने मर्म को चीरकर देखनेवाली अपनी पैनी दृष्टि से रामनाथ की ओर देखा। उसके मुख के भाव से ऐसा जान पड़ता था जैसे वह कोई खास बात कहना चाहती है, पर कह नहीं पाती। रामनाथ खटिया पर इस तरह सिमट-कर बैठा हुआ था, जैसे विचारक के सामने खून का अपराधी।

मार्था ने दरवाज़े पर से ही कहा—"तुम चाय पी चुके हो ?" उसके मुख पर अभी तक घनी छाया घिरी हुई थी।

"नहीं," मार्था की ओर आधी दृष्टि से देखकर रामनाथ ने कहा।

मार्था फिर कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही, और फिर चुपचाप ही चली गयी।

प्राय: पन्द्रह मिनट बाद मार्था एक 'ट्रे' में चाय बनाकर ले आयी और रामनाथ के कमरे में जो एक छोटी-सी गन्दी मेज़ रखी थी, उस पर उसने 'ट्रे'

को रख दिया। उसके बाद स्वयं एक लोहे की कुर्सी पर बैठकर चाय कप में डालने लगी। इस समय उसके मुख की घनी छाया बहुत हल्की हो आई थी और मुस्कान की प्रायः अव्यक्त-सी झलक रामनाथ को दिखाई देने लगी थी। चाय डालते हुए उसने सहज भाव से कहा "रामनाथ, मैं आज तुमसे एक बात पूछना चाहती हूं। वचन दो कि तुम सीधा और सच्चा उत्तर दोगे और कोई बात मुझसे नहीं छिपाओगे।"

"मैं वचन देता हूं, मार्था !"

"तब बताओ कि इस साड़ी के लिये तुम्हारे पास रुपये कहां से आये, और मदर को जो रुपये तुमने दिये वे तुम्हें कहां से मिल गये ? तुमने मुझसे तो कहा था कि तुम बेकार हो।"

रामनाथ क्षण भर के लिये चुप रहा। उस क्षण भर के लिये उसके मुख की मुद्रा ऐसी विचित्र, वीभत्स, भयानक और साथ ही करुण बन गयी, जैसे वह किसी मार्मिक पीड़न और प्राणघाती ऐंठन से विकल हो रहा हो। उसके बाद सहसा उसके मुंह के भाव में, न जाने किस अज्ञात जादू के फलस्वरूप, आमुल परिवर्तन हो गया। उसकी आंखों में उसके स्वभाव के विपरीत, एक आश्चर्यजनक साहसिकता झलकने लगी। उसने कहा—"तो तुम सच बात जनाना चाहती हो, मार्था ?" यह कहते हुये जब वह मार्था की ओर देख रहा था तो उसे ऐसा लगा था कि मार्था को इसके पहले अपने अन्तर के इतने निकट उसने कभी नहीं पाया।

"तुम कुछ भी छिपाओगे तो मैं ताड जाऊंगी,"—चाय में चीनी मिलाते हुए मार्था ने कहा।

"तो सुनो ! मैंने आज एक आदमी की गिरह काटी है, और यह पेशा मैं बहुत दिनों से करता आया हूं, मार्था !"

मार्था हाथ में जो चाय का प्याला लेकर रामनाथ की ओर बढ़ाने जा रही थी, वह सहसा उसके हाथ से मेज़ पर गिरा। प्याला टूटने से बच गया,

केवल चाय उलट कर रह गयी। चाय की ओर कुछ भी ध्यान न देकर वह कुछ देर तक एकटक रामनाथ की ओर देखती रही। उसके बाद एक लम्बी सांस लेकर शान्त भाव से बोली—इतने दिनों तक मेरे मन में इसी तरह का कुछ अस्पष्ट सन्देह था। फिर भी तुम्हारे मुँह से इस तरह की बात सुनने को मैं जैसे तैयार नहीं थी। जो भी हो, तुम्हारी सचाई की मैं तारीफ़ करती हूँ, पर एक बात और तुमसे पूछना चाहती हूं। यह बात मुझसे छिपी नहीं है कि तुम्हारे समान शिक्षित व्यक्ति समाज में कम मिलते हैं और तुम समझदार भी काफी हो। तब इस प्रकार का हीन पेशा तुमने क्यों अख़्त्यार किय ?

"मैं इसका भी उत्तर देता हूं"—ढीठ स्वर में रामनाथ ने कहा। इतने दिनों से दुष्कर्म की जो चोर मनोवृत्ति उसके अन्तर को घुन की तरह साफ कर रही थी उसके बाहर निकल जाने पर एक स्वस्थ और संबल पौरुष का भाव उसके मुख पर छा गया, जो मार्था को बहुत प्रिय लग रहा था। रामनाथ कहने लगा, "पैसेवाले सेठों और बड़ी-बड़ी तनख्वाहें पानेवाले बाबुओं की जेबें काटकर मुझे एक आश्चर्यजनक सुख प्राप्त होता है, मार्था! केवल उसी सुख के लिए मैं गिरहें काटता रहा हूं, अपनी ग़रीबी को दूर करने के उद्देश्य से नहीं। किसी की गिरह काटकर मैं इधर उधर पैसों को लुटा देता हूं, अपने उपयोग में उसे नहीं के बराबर लाता हूं—आज की घटना को अपवाद ही समझो, जब कि संसार के अधिकांश मनुष्य दाने-दाने को मुहताज हो रहे हैं तब इन धनिकों को रुपया बटोरने का कोई नैतिक अधिकार है, मैं ऐसा नहीं मानता। इसलिए समय-समय पर उन लोगों की गांठ काटकर मैं मन ही मन अपने को निर्धन और दलितों का स्वयंसिद्ध प्रतिनिधि समझकर खुश हो लेता हूँ।

मार्था बड़े ग़ौर से उसकी बातें सुन रही थी। धीरे-धीरे मार्था की आंखों में एक निराला उन्माद नशे की तरह चढ़ जाता था। रामनाथ की बात पूरी हो जाने पर वह कुछ तीव्र स्वर में बोली—"मैं तुम्हारी इस मनोवृत्ति को

धिक्कार योग्य समझती हूं। यह मैं जानती हूं कि एक महत्वपूर्ण विद्रोह का बीज तुम्हारे भीतर घर किए हुये है, इसीलिये मैं धिक्कारती हूं। ज़रा एक बार सोचो तो सही, तुमने अपने विद्रोह को जो विकृत रूप दिया है उसने तुम्हारी कैसी दुर्गति कर डाली है। अपने रूखे-सूखे बाल, मुरझाया हुआ मुँह, चोरों की-सी आंखें, गंदे कपड़े, अधपेट भोजन, उद्देश्यहीन, अस्त—व्यस्त जीवन, घृणित, दुष्कर्मी की दिनचर्या, इन सब बातों पर गौर करो। तुम में योग्यता है, शिक्षा है, संस्कृति है, मस्तिष्क है, हृदय है, सब कुछ है। तिस पर भी तुम लोगों की गिरहें काटकर मन में यह समझकर पुलकित होते रहते हो कि तुमने समाज में अपने ही समान शोषितों का बदला चुका लिया। अरे, भले आदमी, अगर तुमने अपने इस मार्मिक विद्रोह की प्रवृत्ति को स्वस्थ रूप दिया होता, तो नई सामाजिक क्रांति के अग्रदूतों के साथ तुम्हारा भी स्थान होता। पर तुमने एक हीन और संकीर्ण घेरे में अपने को बांध लिया है और उसी में सन्तुष्ट रहना चाहते हो। उठो! अपने भीतर गहराई से नज़र डालो। अब भी सँभल जाओ, और आज से प्रतिज्ञा करलो कि अपने विद्रोह को संकीर्ण और विकृत रूप न देकर सामुहिक और व्यापक कल्याणकारी रूप देने के लिए कमर कसकर खड़े हो जाओ!"

माथा क्षण भर के लिये अपने अन्तर की किसी अज्ञात चिंता में खो गयी, किन्तु दूसरे ही क्षण वह फिर कहने लगी—"मुझे देखो। मैं तुमसे किसी कदर कम अत्याचार-पीड़ित नहीं रही हूं। इस चुड़ैल—मदर एलिज़ाबेथ ने—मुझे कैसी-कैसी खतरनाक परिस्थितियों में डाला है और अर्थ के लाभ से मेरी क्या-क्या दुर्गति कराई है, इसका इतिहास अगर मैं तुम्हें सुनाऊं तो तुम्हारे रग खड़े हो उठेंगे; पर मैंने अपने विद्रोह को भरसक विकृत रूप में परिस्फुट नहीं होने दिया है। मेरे मन में एक बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा है। मैं उसको चरितार्थ करने के लिये बरसों से उचित अवसर की

प्रतीक्षा में हूं और अपने विद्रोह की भावना को उसी के लिए सुरक्षित रखे हुए हूं ।

रामनाथ आँखें फाड़-फाड़कर तद्‌गत भाव से मार्था की बातें सुन रहा था । मार्था जब कुछ रुकी, वह तब भी कुछ नहीं बोला । मार्था कहती चली गयी—"रामनाथ ! मैं जानती हूं कि तुम मेरे लिए सब कुछ कर सकते हो, इसलिए आज एक वचन तुमसे लेना चाहती हूं । आज से यह प्रण कर लो कि चोरों के इस घृणित पेशे को सदा के लिए त्याग दोगे, बोलो मेरा कहना मानोगे ?"

रामनाथ बोला—मैं जानता हूं, मार्था, इसके लिए मुझे अपने आप से बहुत लड़ना पड़ेगा, पर विश्वास रखो कि आज से मरते दम तक मैं तुम्हारी इच्छा के विपरीत कार्य नहीं करूंगा । "

"तो आओ" आज दोनों जीवन के एक ही लक्ष्य के लिए समान रूप से प्रतिज्ञाबद्ध हो जावें । दोनों आजीवन एक ही आदर्श के लिए एक दूसरे के घनिष्टतम सहयोग में रहने की शपथ लें । "

"रामनाथ ने कहा—"मैं शपथ लेता हूं ।"

"चलो, इस शपथ की पूर्णाहुति नीचे होगी, यह कहकर मार्था ने रामनाथ का हाथ पकड़कर उसे उठाया । बाहरवाले कमरे से नयी बनारसी साड़ी उठाकर मार्था ने अपने हाथ में ले ली । दोनों नीचे गये । नीचे अँगीठी में अभी तक कोयले दहक रहे थे । मार्था ने सहसा उस नयी साड़ी को अँगीठी में डाल दिया । रामनाथ का हृदय हाय-हाय कर उठा । उसने उचककर कहा—"यह क्या करती हो ? " पर मर्था ने जोर से उसका हाथ पकड़ लिया, और बोली—"तुम हिन्दू हो । हिन्दुओं के यहां जीवन की सबसे महान प्रतिज्ञा यज्ञ में आहुति डालने के बाद पक्की होती है । हम दोनों के जीवन की भी सबसे बड़ी प्रतिज्ञा-गठजोड़ा-घृणित कमाई की आहुति के बाद ही पक्की हो सकेगी । आज से हर तरह से हम दोनों के नये जीवन का आरम्भ होगा !"

आहुति

रामनाथ क्षण भर के लिये भ्रान्त भाव से मार्था की पुलकोन्मादभरी आंखों की ओर देखता रहा, उसके बाद सहसा उसने मार्था को गले से लगा लिया।

मदर एलिज़ाबेथ को इतने बड़े कांड की सूचना का क्षीणतम आभास भी कभी न मिल पाया!

फोटो

श्याम मनोहर सक्सेना किसी इन्श्योरेन्स कम्पनी का एजेंट था। दो तीन दिन पहिले उसकी स्त्री उमा घर से उसके पास आ पहुँची थी। आज सुबह इधर-उधर दौड़ धूप करने के बाद जब वह थका हुआ मकान पर पहुँचा तो भोजन करने के बाद आराम करने के इरादे से पलंग पर लेट गया। वह अच्छी तरह से लेटने भी न पाया था कि उसकी स्त्री ने आकर उसके पलंग के पास खड़े होकर कुछ व्यंग से दबी हुई मुस्कान के साथ और कुछ गम्भीरता पूर्वक कहा—'मुझे पता नहीं था कि इस बीच किसी दूसरी स्त्री से तुम्हारा हेल-मेल हो चुका है!' उसके कण्ठ-स्वर में व्यंग कितना था और दर्द कितना, इसका ठीक ठीक हिसाब बताना कठिन है।

श्याम मनोहर कौतूहलवश करवट बदलकर उसकी ओर मुख करके बोला- "पता कैसे लगा, कुछ मैं भी तो सुनूँ।"

"जानकर क्या करोगे, चुपचाप लेट जाओ, आराम करो।"

यह कहकर उमा चलने लगी। श्याम मनोहर पहले समझा था कि उमा परिहास कर रही है, पर अब उसके मुख का भाव और बोलने का ढंग देखकर उसे जाना पड़ा कि मामला कुछ गहरा है। उसने उसका अंचल खींचकर उसका हाथ लेटे-लेटे ही खींच लिया और कहा—"नहीं, तुम्हें बताना ही होगा!"

"छोड़ो, मुझे जाने दो !" कहकर वह अपने को छुड़ाने को चेष्टा करने लगी।

पर श्याम मनोहर ने उसे मज़बूती से पकड़ लिया और बलपूर्वक उसे पलंग पर बिठलाकर उससे पुचकार भरे शब्दों में कहा—"मुझे साफ़-साफ़ बताओ कि तुम क्या कहना चाहती हो ? किस स्त्री से मेरा हेल-मेल करने की बात तुम कहती हो ?"

उमा बहुत-कुछ शान्त हो गई थी, तथापि वह नीचे की ओर मुँह किये रही और कुछ भर्राई हुई सी आवाज़ में बोली—जिस स्त्री का फोटो तुम रक्खे हो उसकी बात मैं कहती हूं, और किसकी बात करती हूं ?

"फोटो ? मैं किसी स्त्री का फोटो रखे हूं ! हा ! हा ! हा ! तब तो तुम्हारी बात पक्की है !" बहुत देर तक श्याममनोहर ठहाका मारकर हँसता रहा।

पर उमा इस अट्टहास से तनिक भी विचलित न हुई और पूर्ववत् गंभीर होकर बोली—"अगर मैं अभी निकालकर दिखा दूं, तब ?"

"अच्छा, दिखाओ !"

उमा उठ खड़ी हुई और थोड़ देर में पोस्टकार्ड साइज़ का एक फोटो, जो बहुत दिनों से किसी अरक्षित स्थान में पड़े रहने के कारण कुछ धुँधला हो गया था, हाथ में लेकर श्याममनोहर को दिखाने लगी। फोटो एक सुन्दरी तथा फैशनेबिल युवती का था। उस धुँधले चित्र में भी युवती के आश्चर्यजनक सौन्दर्य की तीक्ष्णता स्पष्ट झलक रही थी। उसकी भाव-विभोर आंखों की मार्मिक दृष्टि से एक तोपखाना और साथ ही एक सकरुण कोमलता की छाया रेखाएं जादू की किरणों की तरह विकीर्ण हो रही थीं। साधारण फैशनेबिल स्त्रियों में जो सुसज्जित गुड़ियों का-सा निर्जीव भाव पाया जाता है, वह उसमें नहीं था। उसके चेहरे में रहस्यमय भाव की उद्दाम सम्मोहिनी दर्शक को बरबस मन्त्रमुग्ध-सी कर देती थी। कुछ-क्षण के लिए श्याममनोहर विस्मय-विमुग्ध होकर उस चित्र को देखता रहा। फिर अकस्मात् वह खूब ज़ोर से हँसा और बोला—"यह निर्जीव चित्र तुम्हारे मन में ऐसी ज़बर्दस्त ईर्ष्या जगाने में सफल हुआ है, यह सचमुच आश्चर्य की बात है; पर तुम्हारी ईर्ष्या अकारण है। इस स्त्री के

साथ हेल-मेल की बात तो दूर रही, उसे मैंने कभी अपनी आंखोंसे देखा तक नहीं।"

"तब यह फोटो यहाँ कैसे आया?"

"यही आश्चर्य तो मुझे भी हो रहा है। हां, याद आ गया। एक बात सम्भव हो सकती है। मैं जब इस मकान में आया था तो जो महाशय उसके पहले इस मकान में रहते थे, उनके बहुत से 'फ्रेम' चढ़े हुये चित्र यहाँ एक कोने में रखे पड़े थे। मेरे आने के कुछ दिन बाद वह उन सब चित्रों को उठाकर ले गये थे। यह बिना 'फ्रेम' का चित्र भी उनके घर की किसी स्त्री का रहा होगा।"

"हूं! ठीक है," कहकर उमा बाहर चली गई। स्पष्ट ही उसे अपने पति की बात पर विश्वास नहीं हुआ था।

उमा के चले जाने पर श्याममनोहर ने एक बार चित्र को गौर से देखा। वास्तव में जिस मोहिनी का प्रतिरूप उतारा गया था, वह ऐसा सम्मोहक था कि उसकी आँख 'हिप्नोटाइज़' किये गये व्यक्ति की तरह उस पर बहुत देर तक गड़ी रह गई। उमा ने फिर एक बार कमरे में प्रवेश करना चाहा तो पति को उस चित्र में तन्मय देखकर वह दुख, क्रोध और ईर्ष्या से क्षुब्ध होकर दरवाज़े से ही लौटकर चली गई। श्याममनोहर ने कुछ देर बाद चित्र को उठाकर अपने सिरहाने, बिस्तर के नीचे छिपाकर रख दिया और एक लम्बी साँस ली।

उस दिन रात को उमा अपने पति से नहीं बोली। श्याममनोहर ने उसे कितना ही समझाया, पर उसका समझाना सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। श्याममनोहर को अपनी पत्नी के उस प्रचण्ड मान के कारण दुख के साथ एक कौतुक-जनित सुख का भी अनुभव हो रहा था। वास्तव में यह बात कौतुक-पूर्ण ही थी कि जिस चित्र के सम्बन्ध में उसे किसी प्रकार की जानकारी तक कभी न रही, उसे स्वयं कहीं से आविष्कृत करके उसकी पत्नी कल्पनातीत ईर्ष्या से दग्ध हो रही थी। वह बीच बीच में मुक्त-हास्य से ठठाकर अपनी स्त्री के काल्पनिक भूत को भगाने

की चेष्टा करता था, पर उसकी युक्तियाँ उस रात निष्फल गईं ।

तीन चार दिन बाद उमा शान्त हो गई, पर श्याममनोहर के मन में उस अज्ञाता तथा अपरिचिता मायाविनी के चित्र ने जो आशान्ति उत्पन्न कर दी थी वह बढ़ती चली गई । अकेले में वह उस चित्र को देखा करता और फिर बड़ी सावधानी से उसे छिपाकर रख देता । वह सोचता कि चित्र की वह मायाविनी कुछ ही दिन पहले तक उसी मकान में रहती होगी, जिसमें अब वह स्वयं रहता है । वह महिला वास्तव में फैशनेबिल है, या फोटो खिंचाने के लिये फैशनेबिल बन गई थी । उसकी दिनचर्या क्या रहती होगी ? उसके पति की जीविका क्या है ? वह बहुत धनी तो नहीं होगा, क्योंकि केवल १३)रु० माहवार किराये के मकान में रहनेवाले व्यक्ति की आर्थिक परिस्थिति का अनुमान लगाना कठिन नहीं है । इसी तरह की चिन्ताओं में वह निमग्न रहा करता ।

एक दिन वह किसी एक चौराहे पर तांगे से उतरकर किसी विशेष व्यक्ति को अपनी इंश्योरेन्स कंपनी के जाल में फंसाने के इरादे से फुटपाथ की बाईं ओर से होकर पैदल जा रहा था । अकस्मात् एक व्यक्ति, जिसकी आयु ३५ वर्ष के करीब होगी, उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसके प्रति हाथ जोड़कर बड़े प्रेम भाव से मुस्कराते हुए बोला—"नमस्कार, कहिये किस ओर तशरीफ़ ले जा रहे हैं ?"

श्याममनोहर क्षण भर के लिए विस्मित-सा रहा । फिर तत्काल ही उस नवागत व्यक्ति को पहचान लिया । वह वही व्यक्ति था जो पहले उसी मकान में रहता था, जिसमें श्याममनोहर अब रहने लगा था । अपने चित्रों को ले जाने के लिये जब वह आया था तो श्याममनोहर से उसका थोड़ा बहुत परिचय हो गया था ।

श्याममनोहर ने प्रत्युत्तर में कहा—नमस्कार ! आप मज़े में तो हैं ! आप इधर कैसे पधारे ?

'मैं यहीं रहता हूँ। सामनेवाली गली में मेरा मकान है। आइए, तशरीफ़ लाइए, ज़रा चलकर मेरा मकान तो देख लीजिए !'

श्याममनोहर ज़रा हिचकिचाया, पर उसके नवपरिचित मित्र ने बड़े आग्रह के साथ कहा—'यहीं दो क़दम पर मकान है। आप एक बार अवश्य चलकर मुझे कृतार्थ करें।'

इस आग्रह और अनुरोध से विवश होकर श्याममनोहर उसके साथ चलते चलते उसने अपने नये मित्र से पूछा—'माफ़ कीजिए, आपका नाम मैं भूल गया।'

'मुझे रामसरन कहते हैं।'

'आपके साथ आपके घर...और कौन-कौन रहते हैं ?'

'मेरी मां और बहन।'

'माफ़ कीजिये, पर आप विवाहित तो अवश्य होंगे !'

'जी नहीं, मैंने अभी विवाह नहीं किया है, और न अभी करने का इरादा है।'

'आश्चर्य है !'

'यह मेरा मकान आ गया; आइए, पधारिये !'

रामसरन नामधारी महाशय श्याममनोहर को सीधे ऊपर ले गये और एक सुसज्जित कमरे में लाकर उसे बिठा दिया। कमरे की दीवारों पर इतने अधिक चित्र टँगे थे कि मुश्किल से कोई स्थान बाक़ी बचा होगा। चित्र इसी प्रकार के थे। शिव के तांडवनृत्य तथा राधाकृष्ण की युगल मूर्तियों से लेकर सिनेमा 'स्टार्स' तक सभी की प्रतिछबियां वहां विराजमान थीं। महात्मा गांधी से लेकर पं० गोविन्दवल्लभ पन्त तक सभी नेता वहां शोभायमान थे। पारिवारिक चित्रों की संख्या भी वहां कम नहीं थी। जिस मोहिनी के चित्र ने श्याम मनोहर पर गहरा प्रभाव डाल रक्खा था, उसका एक बड़े साइज़ का फोटो भी एक कोने में टँगा हुआ था।

श्याममनोहर कुछ देर तक चित्रों को देखता रहा। इसके बाद उसने अपने नवपरिचित मित्र से पूछा—आप यहां क्या आॅफ़िस में काम करते हैं?

बड़ी नम्रता और प्रेमभाव से श्रीयुत रामसरन ने उत्तर दिया—जी नहीं, मैं बहुत से पत्रों का सोल एजेन्ट हूँ। अख़बारों की एजन्सी से और आपकी कृपा से मैं दो रोटियाँ कमा लेता हूँ।

श्याममनोहर यह पूछने के लिये बहुत उत्सुक हो रहा था कि "आप की बहन क्या करती हैं?" पर उसे साहस नहीं होता था।

"आप ज़रा देर तशरीफ़ रखे रहें, मैं अभी आता हूँ," यह कहकर रामसरनजी भीतर चले गये। श्याममनोहर अकेले बैठे बैठे छत की कड़ियों को गिनने लगा। उसका हृदय अकारण ही किसी अजानित आशा अथवा आशंका से धड़क रहा था। प्रायः पांच मिनट बाद रामसरनजी वापस चले आये। आते ही बोले—"माफ़ कीजियेगा, देर हो गई, आप को अकेले ही बैठना पड़ा।"

"जी नहीं, जी नहीं..." इसके आगे श्याममनोहर कुछ नहीं कह सका।

"आप यहां क्या करते हैं?"

"मैं यहां एक इंश्योरेन्स कम्पनी का एजेन्ट हूँ।"

"काम तो आपका अच्छा ही चलता होगा?"

"जी हां, काफ़ी अच्छा चलता है।"

इसके बाद दोनों कुछ समय तक मौन रहे। श्याममनोहर ऐसा भाव जताने लगा, जैसे वह चित्रों के निरीक्षण में तन्मय हो रहा हो। इसके बाद एकाएक बोल उठा—"अच्छा अब मुझे आज्ञा दीजिए।" और यह कहकर उठने लगा।

रामसरनजी ने कहा—'वाह, यह कैसे हो सकता है? पहली बार आप मेरे मकान में तशरीफ़ लाये हैं, बिना जलपान किये कैसे जा सकते हैं?'

श्याममनोहर नम्रता पूर्वक जलपान के प्रति अपना विराग प्रदर्शित करना ही चाहता था कि भीतर की ओर दरवाज़े का पर्दा हटा और प्रायः एक पच्चीस वर्ष की अनुपम सुन्दरी युवती ने भीतर प्रवेश किया। युवती एक चिट्टी-सी साड़ी

पहने थी, जिसकी कन्नी पर कारवां का चिन्ह बना हुआ था। एक लाल रंग का ब्लाउज़ उसके शरीर की शोभा बढ़ा रहा था। उसके मुख के भाव से एक सरस-स्निग्ध शोभा और सौष्टव व्यक्त हो रहा था। उसकी आंखों की चुम्बक माया की अपूर्वता का विश्लेषण करना कठिन था। वह एक रहस्यभरी मुस्कान से मन्द-मन्द मुस्कराती हुई आई। श्याममनोहर मुहूर्त के दर्शन से समझ गया कि वह जादूगरिनी वही है जिसका फोटो उसे उसकी स्त्री ने दिखाया था। वह ऐसा हौल दिल हो गया था कि उस सुन्दरी के स्वागत के लिये खड़ा होने की चेष्टा करने लगा, पर घबड़ाहट के कारण आधा खड़ा होकर रह गया। सुन्दरी सहज स्वभाविक गति से एक कुर्सी पर आकर बैठ गई। रामसरनजी ने उसका परिचय देते हुए श्याममनोहर से कहा—'यह मेरी बहन–रामकली है।' इसके बाद उन्होंने रामकली को भी श्याममनोहर का परिचय दिया। श्याममनोहर ने बुद्ध की तरह रामकली की ओर घबड़ाहट की दृष्टि से देखते हुए हाथ जोड़े। रामकली ने बड़े सुघड़पन के साथ उसका प्रत्याभिवादन किया।

रामसरनजो ने अपनी बहन से पूछा—'चाय में कितनी देर है?' उत्तर मिला--'आती ही होगी।' पर क्या सक्सेनाजी हम लोगों के यहाँ चाय पी सकेंगे?' किसी प्रकार का संकोच या झिझक इस प्रश्न में नहीं थी। जैसे कोई नवपरि-चिता महिला नहीं, कोई सभा-चतुर ढीढ़ पुरुष यह प्रश्न कर रहा हो।

इस प्रश्न से श्याममनोहर की झिझक कुछ दूर हो गई। उसने सकरुण मुस्कान की तरल आभा अपनी आंखों में झलकाते हुए यथाशक्ति शांत भाव से कहा—'क्षमा कीजियेगा, आपका प्रश्न मुझे रहस्यमय–सा लगता है।'

रामकली ने कुछ गंभीरता के साथ उत्तर दिया--'मैं आपको यह इत्तिला देना अपना कर्तव्य समझती हूं कि हम लोग हरिजन हैं।'

रामसरनजी ने आंखों के संकेत से संभवतः अपनी बहन को जताया कि उसने अपनी जातीयता के सम्बन्ध में यथार्थ सुचना देकर अवसर विरुद्ध कार्य किया है; पर रामकली इस संकेत से तनिक भी विचलित नहीं हुई। वह

अपनी सहज-स्वाभाविक ढिठाई से श्याममनोहर की ओर देखती रही। श्याम-मनोहर ने अपनी घबड़ाहट को यथाशक्ति दबाने की चेष्टा करते हुए कहा—'यदि यही कारण है तब तो मैं अवश्य आपके यहां चाय पियूंगा।' यह कहते हुए उसका मुंह अकारण ही लज्जा और संकोच से लाल हो आया। उसने सिर आधा नीचे की ओर कर लिया और कनखियों से रामकली की ओर देखने लगा। रामकली मंद-मधुर मुस्काने लगी। सम्भवतः वह यह बात ताड़ गई थी कि श्याममनोहर सुधारवादी होने के कारण नहीं, बल्कि उसके सौन्दर्य की छटा और हाव-भाव से मन्त्र-भ्रान्त होकर उसके हाथ की चाय पीने को तैयार हुआ है!

थोड़ी देर में नौकर चाय का पूरा सरंजाम और उसके साथ ही मिठाई, नमकीन, बिस्कुट आदि जलपान की सामग्री लेकर आया और एक गोल मेज़ के ऊपर उसने सब सामान रख दिया। तीनों उस मेज़ के इर्द-गिर्द बैठ गये। रामकली बड़ी सुघड़पन के साथ प्रत्येक के 'कप' में चाय ढालने लगी। श्याम-मनोहर के लिये किसी फैशनेबिल शिक्षिता के साथ टेबिल पर बैठकर चाय पीने का यह प्रथम अवसर था। वह मौन-मुग्ध होकर चाय ढालते समय रामकली के अंग-प्रत्यंग की एक-एक हरकत पर बड़ी बारीकी से गौर कर रहा था। रामकली भी चाय ढालती हुई बीच-बीच में अपने जादू भरे कटाक्ष से उस पर सम्मोहन के साथ मारण-बाण भी निक्षेप करती जाती थी।

चाय का चक्कर समाप्त होने में पूरा एक घण्टा बीत गया। इस बीच रामकली ने अपनी बातों से और व्यवहार से श्याममनोहर को पूर्णतयः अपने वश में करके उसके मन की यह दशा कर डाली थी कि वह उसके चरणों की धूल सर पर डालने के लिये तैयार था। साथ ही उसे ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे उस परिवार से उसका परिचय केवल घण्टे भर का नहीं था; जैसे पूरा एक युग उसे इन दो भाई-बहनों के संसर्ग में रहते बीत चुका हो। रामसरनजी का प्रेमपूर्ण अतिथि-सत्कार देखकर भी वह कम प्रसन्न नहीं हो रहा था।

चाय-पान समाप्त होने के बाद रामकली ने अकस्मात् यह प्रस्ताव किया कि तीनों साथ ही फ़िल्म देखने चलें। इतनी शीघ्र गति से इस मायाविनी नारी को घनिष्ठता बढ़ाते देखकर श्याममनोहर को जितना आश्चर्य हो रहा था, उतना ही उसके मन में यह विश्वास भी दृढ़ होता चला जाता था कि उसकी किसी भी बात में अस्वाभाविकता की बू तक वर्तमान नहीं थी। वास्तव में इस सतेज नारी के स्वभाव को ढिठाई में एक ऐसी विशेषता थी जो उसे सुहाती थी और उसके रूप के जादू का असर चौगुना बढ़ाती थी।

श्याममनोहर को सिनेमा से प्रेम नहीं था; पर उस दिन वह रामसरनजी और उसकी बहन के साथ सिनेमा देखने गया और अपनी गांठ के पैसों से उसने 'मझधार' नामक फिल्म के सबके लिए टिकट खरीदे। रामकली कोई दृश्य देखकर कभी हँसती, कभी टीका-टिप्पणी करने लगती, कभी स्तब्ध और मौन रहती। रामकली फिल्म देख रही थी, पर श्याममनोहर रामकली के रंगढंग देख रहा था।

सिनेमा देखकर श्याममनोहर घर लौटा और अपनी स्त्री से अधिक बातें न कर केवल एक पराठा खाकर पलंग पर चुपचाप लेट गया। उस दिन की छोटी-सी-छोटी बात का स्मरण करके उसे तरह तरह की काव्य-कल्पना से रंग कर रस लेने की चेष्टा करने लगा।

तब से रामकली के यहां उसका आना जाना नियमित रूप से चलने लगा। उसे यह बात प्रथम परिचय के दो दिन बाद मालूम हुई कि रामकली लड़कियों के नार्मल स्कूल में अध्यापिका है।

उस दिन इतवार था। श्याममनोहर सुबह से ही यह इरादा किये बैठा था कि आज दिन भर रामसरनजी के यहां अड्डा जमावेगा। प्रायः साढ़े ग्यारह बजे उसने खाना खाया और खाना खाते ही चलने की तैयारी करने लगा। उमा की आज बहुत इच्छा हो रही थी कि श्याममनोहर आज दोपहर को घर पर ही रहे। प्रायः आठ मास के बिछोह के बाद श्याममनोहर से वह मिल पाई थी;

पर मिलने के पहले ही दिन वह निगोड़ा फोटो उसके हाथ लग गया। उसके मन में इस बात का पूरा विश्वास जम गया था कि उस फोटो को लेकर उसने अपने पति के साथ जो व्यंग किया था, उसी से नाराज़ होकर वह तब से एक बात भी जी खोलकर नहीं करते। वास्तव में उसके प्रति श्याममनोहर का हृदय कुछ ऐसा बदल गया था कि उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर वह पूरी तरह से नहीं देता था और भरसक अपने उत्तर को केवल 'हां' या 'न' तक सीमित रखने की चेष्टा करता था। उसको अब इस बात के लिये भी बड़ा पश्चाताप होने लगा था कि प्रारम्भ में कुछ दिनों तक जब वह फोटो को लेकर व्यंग किया करती थी और मान का भाव जताती थी तो श्याममनोहर प्रेमपूर्ण परिहास से उसे मनाने की कोशिश किया करता था, पर वह अपने मान पर अड़ी रहती थी। निश्चय ही उसी मान की प्रतिक्रिया का ही यह फल है कि अब श्याममनोहर पल्टे में उससे मान किये बैठा है और उसके साथ निपट उदासीनता के साथ पेश आता है। आज वह इस बात के लिए क्षमा मांगने का विचार कर रही थी और श्याममनोहर को हर हालत में मनाने के लिए तैयार बैठी थी; पर श्याममनोहर की उदासीनता आज और दिनों की अपेक्षा और अधिक स्पष्ट हो उठी थी। उसका मन किसी कारण से इस कदर उखड़ा हुआ मालूम होता था कि उसको उससे कुछ बातें करने का साहस नहीं हो रहा था; पर आज वह जो निश्चय कर चुकी थी, उससे हटना भी नहीं चाहती थी। उसने श्याममनोहर के एकदम निकट आकर उसका हाथ अचानक मजबूती के साथ पकड़ लिया और आँखों में एक निराली, मस्तानी अदा झलकाती हुई संकेतभरी मुस्कान के साथ बोली—"बैठो, आज तुम कहीं नहीं जा सकते। आज न जाने दूँगी बालम!" उसने यह प्रेमपरिहास किया तो सही, पर भीतर ही भीतर वह भयंकर रूप से सहमी और घबराई हुई थी कि उसके पति के वर्तमान मनोभाव को देखते हुए इस प्रकार के रस रंग की बातें कहीं उल्टा असर पैदा न कर।

पर आज बाहर निकलने के लिए श्याममनोहर के पंख फड़फड़ा रहे थे। उमा ने जब अपने प्यार और दुलार से उसे बरबस घर के कैदखाने में बन्द करने की प्रतिज्ञा-सी करली, तो वह मुक्ति के लिए भीतर ही भीतर बुरी तरह छटपटाने लगा; पर बाहर से उमा की उस आंतरिक सहृदयपूर्ण रसाकांक्षा और प्रेम-प्रार्थना का तिरस्कार करने का साहस उसे नहीं होता था। वह मरे मन से अपने कमरे में कुछ देर तक बैठा रहा और जी मसोस-मसोस कर बड़े ही रूखे भाव से अपनी पत्नी का प्रेम-पीड़न सहता रहा। बाद में जब उमा ने उसकी रुखाई की शिकायत बड़े ही करुण शब्दों में करनी शुरू की और अपने भीतर की बहुत दिनों की दबी हुई वेदना का पूर्ण उद्गार प्रकट करते करते अपनी आँखों को खारे जल से उसने भिगोना आरम्भ कर दिया, तो यह सब 'लीला' श्याममनोहर के लिए असह्य हो उठी। वह कुछ देर तक अस्पष्ट शब्दों में न जानें क्या क्या बड़बड़ाता रहा और उसके बाद उमा का हाथ छुड़ाकर अचानक उठ खड़ा हुआ।

घर से बाहर निकलकर जब वह बड़ी सड़क के चौराहे पर पहुँचा तो उसने चैन की एक लम्बी साँस ली। वह रामसरनजी के मकान की ओर अनिश्चित पगों से धीरे-धीरे चलने लगा। जब मकान के दरवाजे के पास पहुंचा तो एक बार उसकी इच्छा हुई कि उल्टे पांव लौट चले; पर फिर न जानें क्या सोचकर उसने दरवाजा खटखटाना शुरू कर दिया।

'कौन ?' बड़े ही तीखे किन्तु मर्मस्पर्शी स्वर में किसी ने भीतर से पूछा।

'मैं हूँ श्याममनोहर, रामसरनजी हैं क्या ?'

'जी नहीं, वह यहां नहीं हैं।'

स्पष्ट ही यह कण्ठस्वर उसी मायाविनी का था, जिसने अपने फोटो तक में एक अवर्णनीय जादू की विशेषता बिखेर दी थी। पर उसका आज का व्यवहार श्याममनोहर को बड़ा विचित्र-सा लगा। उसका नाम मालूम करके भी उसने दरवाजा नहीं खोला और भीतर से ही उत्तर देकर टरका देना चाहा।

इसका कारण श्याममनोहर की समझ में न आया। बहुत सोचने पर केवल एक सम्भावना उसकी समझ में आ रही थी। वह यह कि रामसरनजी की अनुपस्थिति में रामकली उसे भीतर बुलाना निरापद नहीं समझती। उसने मन ही मन कहा—'वह मुझे भद्रवेशी गुण्डा समझती है। आखिर नीच जाति की स्त्री ही तो है। हरिजन समाज की चरित्रहीनता के बीच में जिसका पालन-पोषण हुआ है, वह किसी की सच्चरित्रता पर विश्वास ही कैसे कर सकती है?' इसी तरह की बातें सोचता हुआ वह कुछ देर तक अव्यवस्थित और अनिश्चित मानसिक अवस्था में दरवाज़े के पास ही खड़ा रहा। उसके मन में इस बात की एक अस्पष्ट और क्षीण आशा अभी तक बनी हुई थी कि रामकली दरवाज़ा खोलेगी।

अकस्मात् उसके कानों में दो व्यक्तियों के सम्मिलित अट्टहास की स्वर-लहरी गूँज उठी। वह शब्द रामसरनजी के मकान के दुमंजिले से आ रहा था। संदेह के लिए तनिक भी गुंजाइश न थी कि उन दोनों व्यक्तियों में से एक स्वयं रामकली है, पर दूसरा व्यक्ति, जो निश्चय ही पुरुष था, कौन है, इस बात का अन्दाज़ लगाना श्याममनोहर के लिए असम्भव था। पहले, केवल क्षण भर के लिए यह भ्रम उसे अवश्य हुआ था कि दूसरा व्यक्ति स्वयं रामसरनजी हैं और रामकली ने जान बूझकर उसे यह गलत सूचना दी है कि रामसरनजी घर में नहीं हैं; पर उसका यह भ्रम दूसरे ही क्षण मिट गया था। अट्टहास के साथ ही साथ दोनों आपस में कुछ बातें भी कर रहे थे। श्याममनोहर बड़े गौर से, कान खड़े करके सुनने लगा। वह केवल इतना ही अनुमान लगा पाया कि रामकली जिस व्यक्ति से बातें कर रही है, वह चाहे कोई हो, पर रामसरन नहीं है और यह विश्वास भी उसके मन में जम गया कि उसी की—श्याममनोहर की—चर्चा चलाते हुए वे दोनों अट्टहास कर रहे हैं; पर उसके सम्बन्ध में क्या बातें हो रही हैं, इसका ठीक ठीक अन्दाज़ वह नहीं लगा पा रहा था, क्योंकि केवल कुछ अस्फुट शब्द अथवा फुटकर शब्दों की भनक

उसके कानों में पड़ रही थी। उन फुटकर शब्दों का तारतम्य अपनी चोट खाये हुए मन की भ्रामक कल्पना से विचित्र रूपों में जोड़ता हुआ वह अपने मस्तिष्क के चारों ओर एक अनोखे जाल-जंजाल की रचना करने लगा। उसे ऐसा लगा कि इतना बड़ा अपमान उसका बड़ा से बड़ा शत्रु भी कभी करने का साहस नहीं कर सकता था। उसकी इच्छा हुई कि वह दरवाज़ा तोड़कर भीतर घुसे और ऊपर जाकर दोनों अट्टहास-रत व्यक्तियों को गला दबोचकर समाप्त कर डाले। वह अपने दांतों को पीसकर रह गया। अट्टहास का क्रम अभी तक जारी था। श्याममनोहर के कानों में वह शब्द आग में गलाये हुए ज्वलन्त सीसे के समान पहुंच रहा था। दरवाज़े पर खड़े रहकर उस शब्द को सुनना शूली पर चढ़ाये जाने की क्रिया से भी अधिक कष्टप्रद मालूम हो रहा था; पर वहां से हटने के लिए भी उसके पांव जैसे उठ नहीं रहे थे।

उस मुहल्ले में वह अपरचित था और उस गली में आने जाने वाले व्यक्ति एक अजनबी को रामसरनजी के दरवाज़े के बाहर खड़ा देखकर बड़े गौर से उसकी ओर देखते थे। अन्त में लोक लज्जा बलवती सिद्ध हुई और श्याम-मनोहर अनिच्छा से वहां से चलने लगा। वह सोचने लगा कि रामकली ने उसका आज जो अपमान किया, उसका क्या कारण हो सकता है? उसके मन में धीरे-धीरे यह विश्वास जमने लगा कि प्रारम्भ में कुछ दिनों तक रामकली ने उसकी जो आवभगत की, आदर, सत्कार किया, वह केवल मीठी मीठी बातों से उसे बह-काकर, उसे चाय पिलाकर, उसे धर्मनिष्ठ करने के इरादे से किया। शिक्षित हरिजन-समाज में पैदा होने के कारण उसके मन में उच्चवर्णों के व्यक्तियों के विरुद्ध बदला लेने की भावना निश्चय ही उग्ररूप में वर्तमान है। इसीलिए उन्हीं उल्टे सीधे उपायों से अपने वश करके उसका 'धर्म' नष्ट करके उसे दुत्कार दिया। 'अच्छा, जिस व्यक्ति के साथ वह इस समय बातें कर रही थी, जिसके साथ वह मेरे खिलाफ़ अट्टहास में योग दे रही है, वह कौन हो सकता है? वह भी निश्चय ही मेरी ही तरह कोई उच्च वर्ण का व्यक्ति होगा। उसे भी

मेरी ही तरह फुसलाकर वह चाय पिलावेगी, खाना खिलावेगी और उसके मन से 'छुआछूत' का भूत भगाकर मेरी ही तरह उसकी जातीयता नष्ट करके अन्त में उसे धता बता देगी; पर यह भी तो संभव है कि उस व्यक्ति से उनका नया प्रेम सम्बन्ध स्थापित हुआ हो! पहिले ही दिन उसके रंग ढंग देखकर मुझे मालूम हो गया था कि वह एक निर्लज्ज और चरित्र-हीन स्त्री है। निश्चय ही यही बात है कि उसने एक नये प्रेमिक को फांस लिया है। आज चूंकि रामसरनजी घर पर नहीं हैं, इसलिए उन दोनों को मुक्त होकर रसरंग की बातें करने की पूरी सुविधा मिल गई है। मैं उन दोनों के बीच में निश्चय ही मूर्तिमान विघ्न की तरह लगता, इसलिये रामकली ने मेरे जाने पर दरवाज़ा तक नहीं खोला। निश्चय ही वह बहुत से प्रेमिकों से सम्बन्ध स्थापित कर चुकी है। मुझे भी वह फांसना चाहती थी, पर अब इस कारण वह मुझसे कतराने लगी है कि मैं चरित्रहीन नहीं हूं और उसके फंदे में जल्दी नहीं आ सकता।

उसके अन्तर्मन ने उससे पूछा—क्या तुम सच कहते हो? क्या तुम सचमुच सच्चरित्र हो? क्या रामकली के रूप और यौवन की ओर तुम बेसुध होकर नहीं खिचे हो? पर इस प्रश्न के उत्तर में वह भीतर ही भीतर केवल चुप! चुप! कहकर रह गया।

उसके भीतर कुछ दूसरी ही प्रवृत्तियाँ, दूसरी ही प्रेरणाएँ काम कर रही थीं। उसके भीतर जो सचमुच का गुण्डा छिपा हुआ था, वह बाहर प्रकाश में आने के लिये छटपटा रहा था। ईर्ष्या का उच्छृंखल उन्माद उसके मन और मस्तिष्क को बुरी तरह ऐंठने लगा था। उसके मन में यह कल्पना रह-रहकर तीव्र से तीव्रतर रूप धारण करती जाती थी कि रामकली अपने प्रेमिक के साथ यह चर्चा करती हुई अत्यन्त सुखी हो रही होगी कि उन दोनों ने उसे-श्याम-मनोहर को-अच्छा बेवकूफ़ बनाया है। दोनों प्रेम से युक्त तरंगों में मनमाने ढंग से बिहर रहे होंगे, जबकि वह स्वयं आवारा कुत्ते की तरह दरवाज़े से

दुरदुराया हुआ बाहर भटक रहा है। रह-रहकर उसके कलेजे में सांप लोट रहे थे।

सहसा उसकी सारी भद्रता और सच्चरित्रता का मुखड़ा उतर गया और उसके भीतर का गुण्डा पूरे प्रवेग से भीतर की दीवारों को तोड़-फोड़कर बाहर निकल आया। वह बिना कुछ सोचे समझे फिर से रामकली के मकान की ओर लौट पड़ा। जब दरवाज़े के पास पहुँचा तो ऊपर से उन्हीं दो व्यक्तियों के बोलने का शब्द स्पष्ट सुनाई दिया। रामकली एक बार किसी बात पर खिलखिलाई और दूसरा व्यक्ति—निश्चय ही उसका प्रेमी जवाब में ठट्ठा मारकर हँसा। असह्य पीड़न से पागल-सा होकर श्याममनोहर ने भड़भड़ शब्द से दरवाज़े पर धक्का दिया।

'कौन है?' घबराई हुई आवाज़ में ऊपर से रामकली ने पूछा; पर श्याममनोहर ने इस बार कोई उत्तर न दिया। वह केवल ज़ोर से दरवाज़े को भड़भड़ाता रहा।

रामकली ने एकबार फिर पूछा—'कौन है?' जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला और दरवाज़े का भड़भड़ाया जाना जारी रहा तो वह नीचे उतर आई और उसने भीतर से चटखनी खोल दी। श्याममनोहर को देखकर उसके मुख की मुद्रा गंभीर हो आई। उसने कहा—'ओह, 'आप हैं!'

श्याममनोहर का मुँह लज्जा और संकोच से लाल हो आया था, जैसे उसने कोई बड़ी भारी चोरी की हो! उसने कहा—'माफ कीजियेगा, मैं यह जानना चाहता था कि रामसरनजी आ गये हैं, या नहीं?'

'अभी नहीं आये हैं। वह तीन दिन के लिये शहर से बाहर गये हुए हैं। परसों शायद आवें।' बड़े रूखे ढंग से रामकली ने उत्तर दिया।

'ओह' यह बात है! अच्छा, हां, एक बात मैं आप से कहना चाहता था।'

'कहिए।'

'पर यहां नहीं, भीतर चलिए...'

'यहीं क्यों नहीं कह लेते ? कोई खास बात है क्या ?'

श्याममनोहर जानता था कि वह किसी हालत में भीतर ले जाना पंसद नहीं करेगी; पर उसने भी निराला हठ ठान लिया था, एक दुराग्रही की तरह उसने कहा, 'जी हां, खास ही बात है।'

'तो कल सुबह किसी समय आ जाइएगा, आज सम्भव नहीं है।'

श्याममनोहर ने इस बात पर गौर किया कि रामकली ने सुबह शब्द पर विशेष ज़ोर दिया, जिसका अर्थ उसने लगाया कि वह कल भी सुबह के अलावा और किसी समय उससे इसलिए नहीं मिलना चाहती कि अपने नये प्रेमिक से उसका कल भी 'अप्वाइन्टमेंट' है। उसके भीतर ही भीतर बड़े भयंकर रूप से ईर्ष्या की आग दहकने लगी। संकोच और लज्जा का रोष चिन्ह भी अपने मन के अतल में डुबाकर बोला—'आज क्यों सम्भव नहीं है, क्या मैं जान सकता हूं ?'

'आज मेरे एक विशेष मित्र आये हुये हैं।' रामकली ने बेफिक्री से कहा।

'आह, तब तो उनसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी !'

'पर, पर........'

इतने में एक सुदर्शन युवक ऊपर की सीढ़ियों से उतरकर नीचे आ खड़ा हुआ। उसे देखकर क्षण भर के लिऐ श्याममनोहर विस्मित-सा रह गया। पर रामकली तत्काल ही बड़े ज़ोरों से खिलखिला उठी। उसके बाद उसने श्याम-मनोहर को सम्बोधित करके सुदर्शन युवक की तरफ संकेत करते हुए कहा—'यही हैं मेरे वे मित्र, जिनसे मिलकर आपको बड़ी प्रसन्नता होने की संभावना है !'

'ओह, आपकी तारीफ़ ?' कटे हुए मन से श्याममनोहर ने पूछा।

'आपका नाम श्रीयुत ब्रजमोहनदास है। आपने अभी बनारस यूनिवर्सिटी से एम्० ए० पास किया है। यहां आप के पिता की फर्नीचर की एक बहुत बड़ी दूकान है।'

'आप क्या कायस्थ हैं ?' सुदर्शन युवक की तरफ़ देखते हुए श्याममनोहर ने पूछा।

"जी नहीं, मैं हरिजन हूं। मेरे पुरखे मुद्दत से बढ़ई का काम करते रहे हैं।"

"हरिजन, बढ़ई! तो आप भी हरिजन हैं, अच्छा!"

सुदर्शन युवक ने मन्द मन्द मुस्कराते हुए पूछा—'क्यों आप को आश्चर्य क्यों हो रहा है? आप तो जैसे चौंक उठे!'

"नहीं, नहीं, मैं चौंका नहीं। बड़ी प्रसन्नता हुई आप से मिलकर। आप दोनों अपने हरिजनत्व के सम्बन्ध में बड़े स्पष्टवादी हैं, यही जानकर मैं कुछ...पर वह कुछ नहीं...।"

"आप क्या अपनी जात-पांत के सम्बन्ध में किसी का अस्पष्टवादी होना पसन्द करते हैं?"

"नहीं, नहीं, भला मैं ऐसा क्यों पसन्द करूंगा? मेरा मतलब कुछ दूसरा ही था। मैं जानना चाहता था कि आपका परिचय इनसे (रामकली की ही ओर इशारा करते हुए) कैसे हुआ?"

"यह एक लम्बा क़िस्सा है, उसे जानकर क्या कीजियेगा। आप यह बताइए कि आप यहां कैसे पधारे?"

"मैं रामसरनजी से एक विशेष काम से मिलना चाहता था।"

रामकली एक विचित्र मुस्कान के साथ बोल उठी—'वाह, अभी तो आप कह रहे थे कि आप मुझसे कुछ ज़रूरी बातें करना चाहते हैं।"

श्याममनोहर हताश होकर क्षण भर के लिये रामकली की ओर देखता रहा, उसके बाद कुछ लड़खड़ाती हुई-सी ज़बान में बोला—'हां, हां, आप से भी मुझे कुछ काम था!"

"क्या काम था, बताते क्यों नहीं?"

"पर, पर, वह यहां बताने की बात नहीं है।"

"नहीं आप को बताना ही होगा और यहीं पर—मेरे मित्र इन महाशय के सामने! इनसे छिपाकर मैं आपकी कोई भी बात कभी नहीं सुनना

चाहूंगी।"

"पर-पर... . ."

"नहीं अब आप को बताना ही होगा, इसमें 'पर-वर' की कोई बात नहीं है। कहिए, क्या काम था आपको मुझ से? ज़रा भीतर चले आईए—अगर एकदम दरवाजे पर कहने में आप को कुछ संकोच होता हो तो।"

रामकली की भौहों में एक निराली ढिठाई और आंखों में एक तीखे व्यंग का कटीला आभास वर्तमान था। श्याममनोहर की सिट्टी पिट्टी भूल गई थी। उसने भ्रान्त भाव से एकबार सुदर्शन युवक की ओर देखा और फिर रामकली की ओर देख कर प्रायः हकलाता हुआ बोला—"असल में आप से इंश्योरेन्स के सम्बन्ध में कुछ पूछना चाहता था। मैं-मैं आपका बीमा कराना चाहता हूं।"

रामकली मुक्त भाव से खिलखिला पड़ी।

सुदर्शन युवक ने कहा—"इनसे और बीमा से क्या सम्बन्ध है?"

"असल में मैं रामसरन जी से मिलना चाहता था, वह यहां नहीं हैं, इसलिए..."

"समझा!" यह कहते हुए सुदर्शन युवक के मुख पर की मुस्कान घनघोर गम्भीरता में परिणत हो गई। उसने प्रायः गरजती हुई वाणी में कहा—"आप जानबूझ कर बन रहे हैं। आपकी बातों से ज़ाहिर है कि आप किसी अच्छे उद्देश्य से यहां नहीं आये हैं! आप शायद आज ही एकबार पहिले भी आ चुके हैं। आप ही तो थे, जिन्हे प्रायः आधा घण्टा पहले यह सूचित किया गया था कि रामसरन जी यहां नहीं हैं?" अन्तिम प्रश्न सुदर्शन युवक ने रामकली से किया।

रामकली बोली—"हां, आप ही थे।"

सुदर्शन युवक ने श्याममनोहर को लक्ष्य करके कहा—"यह जानते हुए भी कि रामसरन जी यहां नहीं है, आप फिर चले आए और दरवाजा भड़भड़ाने लगे। जब आप से पूछा गया कि कौन है? आपने कोई उत्तर नहीं दिया।

इन सब बातों का आशय क्या है ? अगर कोई दूसरा होता तो उसका गला पकड़-कर एक धक्के में मैं बाहर धकेल देता । पर चूंकि आप रामसरनजी के परिचित हैं, इसलिए आप को केवल भविष्य के लिए चेतावनी देकर इस समय मैं यों ही छोड़ देता हूं । खबरदार ! आगे फिर कभी आपने इस प्रकार गुंडों की सी हरकत की तो अच्छा न होगा । जाइये अपना रास्ता नापिये ।

श्याममनोहर को ऐसा लगा जैसे उसकी पीठ पर. चोर, लिखकर, उसके मुँह पर कालिख पोतकर उसे गधे की पीठ पर उल्टी ओर मुंह करके चढ़ाकर तमाम शहर में घुमाने की तैयारी हो रही है । रोनी—सी सूरत बनाकर वह बाहर चला गया । बाहर निकलते ही फिर एक बार रामकली औरे उसके 'मित्र' के सम्मिल्ति अट्टहास का शब्द मर्मान्तक वेदना से उसके कानों में गूंजने लगा ।

इस घटना के बाद श्याममनोहर फिर कभी रामकली के यहाँ नहीं गया, पर उसका जो अपमान रामकली ने अपने 'मित्र' के द्वारा कराया था उसकी पीड़ा रह—रह कर उसके कलेजे को बराबर छेदती रही । उसके मन में यह विश्वास दृढ़तर रूप में जम गया था कि रामकली का मित्र नंबरी लफंगा है और रामकली से उसका नाजायज संबन्ध है । यह होते हुए भी उस 'लफंगे' ने रामकली के सामने उसे इस बुरी तरह डांटा जैसे वह रामकली का गार्जियन हो, और उसे गुंडा साबित करके घर के बाहर निकाल दिया ! उल्टा चोर कोतवाल को डांट बतावे ! सोच सोच कर श्याममनोहर की आत्मा रामकली नाम की उस 'वेश्या' का (वह मन ही मन उसे 'वेश्या' संबोधित करके काफी संतोष प्राप्त कर रहा था ।) और उसके लफंगे यार को बिना पानी पिये ही कस-कस कर कोसा करता था ।

इधर उसकी पत्नी उमा अपनी पूरो शक्ति से चेष्टा करने पर भी उसका मन अपनी ओर खींचने में अपने को असमर्थ मालूम कर रही थी । एक दिन उसने समस्त संकोच त्यागकर अपने पति के पाँव पकड़ लिये और अत्यंत करुण

अनुनय पूर्वक कहा—'मुझे क्षमा कर दो ! '

श्याममनोहर ने तत्काल अपने पांव हटा लिये और कहा—'तुम यह क्या कह रही हो ? क्षमा किस बात के लिये करूं ? तुमने क्या कोई अपराध किया है ? इस तरह का पागलपन क्यों करती हो ? '

उमा बोली—'वह निगोड़ा फोटो मेरी जान का गाहक साबित हुआ। मैंने हंसी में तुमको कहा था कि तुम इस फोटोवाली स्त्री से—पर वह भी मेरी मूर्खता थी। मैं जानती हूं कि तुम कभी भूलकर भी किसी परायी स्त्री से प्रेम नहीं कर सकते। पर अपने लड़कपन के लिए मैं क्या करूं ! एक बात मैंने परिहास में योंही कह दी, और तुम तब से उसे गांठ बांधे हुए हो और सब समय मुझसे रिसाये रहते हो ! "

ऐसा मार्मिक व्यंग श्याममनोहर के जीवन-काल में किसी ने उससे नहीं किया था, जैसा उमा ने अपने अनजान में, अत्यन्त सरल और निष्कपट भाव से आज उसके साथ किया। उसकी सारी आत्मा तिलमिला उठी। वह फोटो ! जब उमा ने पहले दिन उसका उल्लेख करके यह ताना कसा था कि उस फोटो वाली स्त्री से उसका प्रेम सम्बन्ध चल रहा है तब वह उसकी उस कल्पना पर कैसे मुक्तभाव से हंसा था ! वह सोचने लगा कि तब क्या वह स्वप्न में भी इस बात की कल्पना कर सकता था वह रमणी, जिसका फोटो इत्तिफ़ाक से उस मकान में भूल से रह गया था, एक दिन वास्तव में उसके जीवन को ऐसे घनघोर रूप से (चाहे बुरे के लिए हो या भले के लिए) छा लेगी, और अंत में अपने " असंख्य प्रेमिकों" में से किसी एक के द्वारा उसे बुरी तरह अपमानित करेगी ? और आज उमा सच्चे हृदय से अपने अंतःकरण के पूर्ण विश्वास से कह रही है कि "तुम भूलकर भी किसी परायी स्त्री से प्रेम नहीं कर सकते!" यह कैसी बिडंबना है ! यदि वह यह कहती कि "तुम किसी दूसरी स्त्री का प्रेम नहीं पा सकते" तो वह कहीं अधिक सत्य होता।

श्याममनोहर ने उमा की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप वहां से उठकर बाहर चला गया। उसकी सारी आत्मा घोर आत्मग्लानि से जर्जरित हो उठी थी।

कुछ दिन बाद उसे डाक द्वारा एक निमंत्रण-पत्र मिला। उसमें नीचे रामसरनजी के हस्ताक्षर थे। उसमें लिखा था कि अमुक मास, अमुक सौर तिथि, अमुक चांद्र तिथि, अमुक बार, अमुक तारीख को उनकी बहन श्री रामकली देवी का विवाह "शहर के सुप्रसिद्ध मिस्त्री" श्री बुलाकीदास के सुपुत्र श्री ब्रजमोहनदास एम. ए. के साथ होना निश्चित हुआ है। इसलिये "उसमें सम्मिलित होकर कृतार्थ करने की कृपा करें।"

श्याममनोहर ने ब्रजमोहनदास का नाम तीन चार बार इस संदेह से पढ़ा कि कहीं वह पढ़ने में भूल तो नहीं कर रहा है।

प्लैनचेट

लाला शंकरदयाल अपने शहर के एक प्रसिद्ध वकील थे। उनकी पत्नी ब्रजेश्वरी की मृत्यु प्राय: चार मास पहले हुई थी। तब से वकील साहब के मन की दशा शोचनीय हो उठी थी। वह सब समय चिन्ताग्रस्त दिखाई देते थे और लोगों से मिलना-जुलना उन्होंने प्राय: छोड़ दिया था। जो कोई भी मुवक्किल उनके पास आता था उसे वे टरका देते थे। अपने मित्रों के आगे भी उन्होंने ऐसी उदासीनता का रुख़ अख्तियार कर लिया था कि वे भी धीरे-धीरे उनसे दूर रहने की बात सोचने लगे थे। वह दिन भर अपने मकान में बन्द पड़े रहते और शाम को जब अच्छी तरह अँधेरा हो जाता तो एक आध घंटे के लिये अकेले, किसी निर्जन स्थान में टहलने के लिए बाहर निकलते। सब समय, चौबीसों घंण्टे, ज्ञात में या अज्ञात में, वह केवल अपनी मृत पत्नी की ही बात सोचते रहते। सोचते—सोचते कभी-कभी वह ऐसे भाव-विह्वल हो उठते कि उनकी आँखों से बरबस टपाटप आँसु गिरने लगते। लाख कोशिश करने पर भी वह उन आंसुओं को रोक न पाते। ऐसी मानसिक दशा में वह प्राय: दस-पन्द्रह मिनट तक आँसू गिराते रहते। जब वह भावावेश अपने आप समाप्त हो जाता, तो उन्हें कुछ समय के लिये बहुत चैन मिलता।

ऐसी बात नहीं थी कि वह अपने मन की उस अप-साधारण दशा के खतरों से परिचित न हों। वह भलीभांति जानते थे कि यदि उनके मन की वह एकान्त

प्रिय, भावमग्न दशा कुछ समय तक और रही, तो वह पागल तक हो सकते हैं। पर उस अप-साधारण मानसिक अवस्था से—आप चाहे मोहोच्छन्नता कहें चाहे भावमग्नता—छुटकारा पाने में वह अपने को एकदम असमर्थ पाते थे।

आश्चर्य की बात सब से अधिक यह थी कि जब तक उनकी पत्नी जीवित रही तब तक कभी वह उसके सम्बन्ध की किसी भी बात को लेकर विशेष चिन्तित नहीं रहे और उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में एक प्रकार से उदासीन से ही रहे। ब्रजेश्वरी की मृत्यु के पूर्व कुछ महीनों से वह उसका इलाज डाक्टरों से करवा रहे थे। पर उन्हें यह विश्वास हो गया था कि जिस भीतरी रोग ने उसे पकड़ लिया है उससे वह बच नहीं सकती, और जल्दी ही ऐसा दिन आने वाला है जब वह इस संसार के समस्त बन्धनों से सम्बन्ध तोड़कर किसी अदृश्य लोक में चली जायेगी। यह सब जानने पर भी उनके मन में इस बात को लेकर कोई आतंकजनक कल्पना नहीं हुई।

पर पत्नी की मृत्यु के बाद वकील साहब को जैसे अकस्मात् उसकी प्रेतात्मा ने धर दबाया हो। वह प्रेतात्मा सब समय जैसे उनके पीछे-पीछे चलती-फिरती रहती थी, जब वह साँस लेते थे तो जैसे उनके साथ वह भी साँस लेती थी, वह बैठते थे तो वह भी बैठती थी, वह उठते थे तो वह भी उठती थी और वह सोते थे तो वह भी जैसे उनके सिरहाने पर बैठकर रात भर ठण्डी आहें भरती हुई जागती रहती थी।

वकील साहब आध्यात्मिक विषयों पर श्रद्धा रखते थे। वर्षों से वह प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थों का अध्ययन बड़ी दिलचस्पी से करते आ रहे थे। वकालत से अवकाश पाने पर यदि किसी विषय की चर्चा उन्हें प्रिय लगती थी तो वह था दर्शन और अध्यात्म-तत्त्व। पर जब से ब्रजेश्वरी उनसे सदा के लिये बिछुड़ गयी, तब से उनकी दिलचस्पी प्रेतात्म-विद्या की ओर बढ़ने लगी। वह दर्शन-वर्शन सब भूल गये, और इस बात से भी उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं रही कि जीवात्मा का परमात्मा से क्या सम्बन्ध है।

अब वह एक मात्र इस चिंता में मग्न रहने लगे कि परलोकगत आत्माओं से वार्त्तालाप किस उपाय से किया जा सकता है। इस बात पर उनका विश्वास दिन-प्रति-दिन दृढ़ से दृढ़तर होता जाता था कि यदि किसी व्यक्ति में सच्ची धुन और पक्की लगन हो तो वह निश्चय ही किसी भी परलोकगत आत्मा को अपने पास बुला सकता है और उसके साथ जी खोलकर बातें कर सकता है। इधर कुछ समय से वह रात दिन प्रेतात्मा-विद्या-सम्बन्धी पुस्तकों के अध्ययन में रत रहते थे, और साथ ही विदेशों के प्रमुख प्रेतात्म-वादियों से लिखा-पढ़ी करके इस विषय से सम्बन्धित बहुत-सी गूढ़ और महत्त्वपूर्ण बातें जानने की चेष्टा में रहते थे।

धीरे-धीरे इस विषय का ज्ञान उन्होंने इस हद तक बढ़ा लिया कि स्वयं अपने हाथ से वह एक बिल्कुल नये ढंग का 'प्लैनचेट' तैयार करने के काम में जुट गये। प्लैनचेट' को उन्होंने ऐसे तीव्र अनुभूतिशील अवैद्युतिक और चुम्बकाकर्षण-युक्त पदार्थों से निर्मित किया जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और हल्के से हल्के तड़ित्-प्रवाह को बड़ी आसानी से पकड़ सकते थे। कम से कम वकील साहब को ऐसा ही विश्वास था कि वह 'प्लैनचेट' निश्चय ही अदृश्य प्रेतात्माओं के अति-सूक्ष्म स्पन्दनों को भी बहुत दूर से खींचकर अपने भीतर बाँध लेगा।

वह उस 'प्लैनचेट' को नित्य रात में सोने के समय अपने सिरहाने के पास तैयार अवस्था में रख देते थे। उन्हें यह विश्वास था कि उनकी पत्नी की जो परलोकगत आत्मा अदृश्य छायामय रूप में नित्य उनके पीछे-पीछे विचरण करती फिरती है वह 'प्लैनचेट' द्वारा निश्चय ही एक न एक दिन अपने परलोक-प्रवास के जीवन पर प्रकाश डालेगी। दूसरे प्रकार के 'प्लैनचेट' में परलोकगत आत्माओं को बुलाने के लिये जिस प्रकार ऊपर हाथ रखने की आवश्यकता पड़ती है, लाला शंकरदयाल के मत में उनके अपने हाथ से तैयार किये हुए उस विशेष 'प्लैनचेट' में उस बात की कोई आवश्यकता न थी। जैसा कि कहा जा चुका है, उसे विद्युत और चुम्बक-तत्त्वों से इतना अधिक सतेज और प्राणवाही बना दिया गया

था कि वह अपने आप, बिना किसी हाथ की सहायता के, प्रेतात्माओं के संकेतों को ग्रहण करके लिपिबद्ध कर लेगा, ऐसी वकील साहब की धारणा थी।

वह नित्य उससे प्रयोग करते जाते थे। प्रतिदिन उसे अधिकाधिक अनुभूतिशील बनाने की चेष्टा में रहते थे और प्रति दिन उसे अपने सिरहाने के पास रखकर इस प्रत्याशा में सोने की तैयारी करते कि सम्भवतः उनकी पत्नी की प्रेतात्मा उसके माध्यम से अपना कुछ हाल उन्हें बता जाय। उनका यह ख़याल था कि प्रेतात्माएं व्यक्तियों के सोने के समय ही विशेष रूप से अपने को प्रकट करना पसन्द करती हैं।

वकील साहब बहुत दिनों तक बड़े अधैर्य से रात-रात भर अर्द्ध निद्रावस्था में अपनी पत्नी प्रेतात्मा का कोई संकेत पाने की प्रतीक्षा करते रहे, पर उनकी आशा पूरी नहीं हुई। अन्त में एक दिन वह बड़ी निराश अवस्था में, प्रायः बारह बजे रात के समय, अपने पलंग पर सोने के इरादे से लेटे। उनकी आंखें कुछ झपने लगी थीं कि इतने में पास ही कहीं से सहसा किसी ने हारमोनियम बजाकर अपने मोटे गले से अलापबाज़ी शुरू कर दी। उससे उनकी नींद उचट गयी। वह तरह-तरह की चिन्ताओं में मग्न होकर लेटे ही थे कि कुछ समय बाद अचानक उन्हें सिरहाने पर रखे हुए 'प्लैनचेट' में 'खसर-खसर' सी आवाज़ सुनाई दी। वह बड़े जोर से कान लगाकर सुनने लगे। यह आवाज़ स्पष्ट से स्पष्टतर होती जाती थी और उसका क्रम एक नियमित गति से चल रहा था। उनकी निगाह 'प्लैनचेट' की ओर गयी। अँधेरे में उन्होंने देखा कि सफेद चादर ओढ़े हुए एक छायामूर्ति जो कद में उनकी स्वर्गीया पत्नी ब्रजेश्वरी के ही बराबर मालूम होता थी, वहाँ पर खड़ी 'प्लैनचेट' के नीचे रखे कागज़ पर जल्दी-जल्दी कुछ लिख रही थी! वकील साहब के हर्ष का कुछ ठिकाना न रहा। उनकी बहुत दिनों की आशा आज चरितार्थ होने जा रही थी। वह चुपचाप इस बात की प्रतीक्षा में लेटे रहे कि छायामूर्ति लिख चुकने के बाद वहाँ से हटे तो जाकर पढ़ें कि उसने क्या लिखा है।

उन्हें ऐसा लगा कि काफी देर बाद वह छायामूर्ति वहाँ से विलीन हो गयी। उसके अन्तर्धान होते ही वकील साहब पलंग पर से उठ खड़े हुए और 'प्लैन-चेट' के नीचे जो बहुत से कागज़ उन्होंने दबाकर रख छोड़े थे, उनमें प्रेतात्मा ने वास्तव में कुछ लिखा है या नहीं और अगर लिखा है तो क्या लिखा है, यह जानने के लिये वह बत्ती जलाने के उद्देश्य से दियासलाई खोजने लगे। वह दियासलाई खोज ही रहे थे कि अचानक उन्हें 'प्लैनचेट' के नीचे के कागज़ की लिखावट उस अन्धकार में रेडियम की घड़ी के अक्षरों की तरह स्वतः प्रकाश से जगमगाती हुई मालूम हुई। वह लपक कर 'प्लैनचेट' के पास गये और कागज़ के जिन टुकड़ों पर प्रेतात्मा ने अपना वक्तव्य लिखा था उन्हें उठाकर बड़ी अधीरता से खड़े-खड़े पढ़ने लगे। प्रेतात्मा ने लिखा था—

'मेरे मर्त्यलोक के भूतपूर्व पति महाशय! मुझे मालूम हो गया है कि आप मेरे मरने के बाद मेरे लिये किस क़दर बेचैन हैं, और मेरी चिन्ता में दिन-पर-दिन घुलते चले जाते हैं! आपकी बेचैनी मुझे बरबस प्रेतलोक से खींचकर आपके पास ले आयी है। आप यह जानने के लिये स्वभावतः उत्सुक हैं कि मरने के बाद मैं किस लोक में हूं और किस समाज के बीच मैं कैसा जीवन बिता रही हूं।

'महाशय! हम लोगों का जीवन ही क्या हो सकता है! हमतो केवल अशरीरी छाया हैं—किसी विगत जीवन की अनुभूतियों की स्मृतियों के सूक्ष्म संकेत-चिन्हों के अतिरिक्त हम और कुछ नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं कि वर्त्तमान में भी मर्त्यलोक के भूतपूर्व निकट सम्बन्धियों की तीव्र अनुभूतियों के विद्युत्-स्पन्दन हम लोगों की अति-चेतना से आकर कभी-कभी टकरा जाते हैं, पर उनसे हमें न कोई विशेष सुख होता है न दुख। कारण यह है कि अनुभूतियों की सुख-दुःखमयी चेतना शरीर के माध्यम से ही हो पाती है और हम हैं कोरी छाया—केवल छाया। पर विगत स्मृतियों की चेतना

हमारे छायाप्राणों में अभी तक कुछ न कुछ दोलन पैदा करती ही रहती है। इसलिये आज आपके आगे इस 'प्लैनचेट' के माध्यम द्वारा मैं अपने मर्त्यलोक के जीवन की कुछ ऐसी स्मृतियों का उद्घाटन करना चाहती हूं जिन्हें मैंने मरते दम तक आपके आगे एकदम गुप्त रखा था और जिनका क्षीणतम आभास भी आपके सम्मुख प्रकट नहीं होने दिया था।

'आपके मन में मेरे मरने के बाद यह भ्रांत धारणा घर कर गई है कि आप मुझे आजीवन बहुत चाहते रहे हैं। पर वर्त्तमान की भ्रांति को झाड़कर यदि आप अपनी स्मृति को एक बार अच्छी तरह टटोलें और हम दोनों के विगत जीवन पर एक बार ध्यानपूर्वक विचार करें, तो आपको याद आवेगा कि आप मेरे अत्यंत निकट रहने पर भी मुझसे कितने दूर रहते थे! पहले तो आपको कोर्ट के कामों से ही फुर्सत नहीं मिलती थी और जो थोड़ा बहुत अवकाश मिलता भी उसे आप या तो अपने मित्रों के संग राजनीतिक या दार्शनिक चर्चा में बिता दिया करते थे, या बड़े-बड़े ग्रंथों के अध्ययन में। मेरे साथ सुख-दुख की बातें करने, मेरी अन्तराकांक्षाओं से परिचित होने, मुझे किसी भी रूप में अपने जीवन की संगिनी के बतौर मानने की चिन्ता आपके मन में कभी उत्पन्न ही नहीं हुई। रात के समय कभी-कभी आप मुझसे मिल लेते थे, सन्देह नहीं, पर आपका वह मिलन अपनी सह-धर्मिणी, अपनी अर्द्धांगिनी, अपनी सहचरी के साथ न होकर अपनी अनुचरी, अपनी रखेली, अपनी भोगेच्छा-पूर्ति की साधन-रूपिणी के साथ होता था।

'मैं मानती हूं आप इस बात के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे कि मेरे लिये रुपये-पैसे, गहने-कपड़े, खान-पान आदि सुख-साधनों की कोई कमी न रहने पावे। पर क्या नारी की आत्मा के रीते कोठे को इन पार्थिव उपकरणों से भरा जा सकता है? उसके हृदय की चिर-प्रेमाकांक्षा को इन पार्थिव उपायों से तृप्त किया जा सकता है? मेरे मरते दम तक यह बात आपकी समझ में न आई कि आपके साथ मैं दुकेली होते हुये भी अकेली थी,

सधवा होते हुए भी विधवा थी। आश्चर्य है! दुनियां भर के अच्छे-बुरे सभी प्रकार के लोगों की तरफ से आप वकालत करते थे, पर मेरी तरफ से अपने ही आगे वकालत करने की फुर्सत आपको नहीं थी!

'आपको मालूम है, हमारे पड़ोस में एक कीर्तन-मण्डली थी। घर में दिन भर अकेलेपन के हाहाकार से घबराकर मैं प्रायः प्रतिदिन दोपहर के समय वहां जाया करती थी। वहा भक्त नारी-मण्डली के साथ मैंने भगवान् के चरणों में लौ लगानी शुरू कर दी। जिन भगवान् ने अपनी किशोर-लीला के अनगिनत रूप दिखाकर ब्रज में प्रेम की बाढ़ बढ़ा दी थी, उनकी आराधना में अपने सारे मन को, सारी आत्मा को डुबा देने की पूरी चेष्टा में मैं लग गई। आरम्भ में कुछ समय तक मुझे ऐसा लगा कि मैं विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम के लोक में पहुंचकर भगवान् के अत्यन्त निकट जा पहुंची हूं। लौकिक प्रेम के अभाव की पूर्ति अलौकिक प्रेम से होते देखकर भीतर ही भीतर मैं एक समुन्नत गर्व की भावना से फूली नहीं समाती थी। पर मेरे उस गर्व को चूर करने के लिए शीघ्र ही एक व्याघात आ खड़ा हुआ। ऊपरी नियम और संयम के नीचे मेरे भीतर जो दुर्बलता दबी पड़ी थी उसको उघाड़ होने की नौबत आ गयी।

'वह कीर्तन-मण्डली दो भागों में बंटी हुई थी—एक स्त्री-भक्त समाज और दूसरा पुरुष-भक्त समाज। साधारण अवसरों पर स्त्री-समाज का कीर्तन दिन में होता था और पुरुष समाज का रात में। पर कुछ विशेष धार्मिक तिथि त्योहारों के अवसरों पर पुरुष और स्त्रियां दोनों कीर्तन में साथ ही भाग लेते थे। दोनों के बीच में केवल पतली चिकों का एक झीना-सा व्यवधान रहता था। जो महाशय पुरुष कीर्तन समाज के मुखिया थे वह अधेड़ अवस्था के एक सीधे—सादे व्यक्तित्व हीन व्यक्ति थे। उन्होंने अकस्मात् किसी कारण से आना बन्द कर दिया, या वह बीमार पड़ गये थे, या शहर छोड़ कर किसी दूसरे स्थान में चले गये थे। जो भी हो, उनके स्थान में

जिन नये महाशय ने पुरुष-मंडली का नेतृत्व ग्रहण किया उनकी अवस्था तीस वर्ष से अधिक न रही होगी। वह देखने में अत्यन्त स्वस्थ और सुन्दर लगते थे और उनका व्यक्तित्व विशेष आकर्षणशील था। वह जाति के ब्राह्मण थे और उनका नाम राधामोहन शर्मा था। जब वह भावमग्न होकर अधमुन्दी आंखों में मोहकता झलकाते हुए गाते थे, तो देखने और सुननेवालों पर एक बड़ा असर पड़ने लगता। मैं भरसक प्रतिरोध करने लगी, और उनके व्यक्तित्व के प्रति उदासीन रहने का पूरा प्रयत्न करने लगी। पर मेरे साथ प्रयत्नों का परिहास करते हुए उनकी मोहकता मुझे जैसे बरबस भूत की तरह दबाती चली जाती थी।

'आरम्भ में मैंने अपने मन की इस अवस्था को एक साधारण सी बात समझ कर उसे कोई महत्व ही नहीं देना चाहा। पर धीरे-धीरे मेरे अनजान में (या जान में) इस बात को लेकर मेरा मन अस्थिर होता चला गया और एक अनोखी बेचैनी मेरे भीतर समा गयी, जो एक क्षण के लिये भी मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहती थी। मेरी भक्तिभावना एक दूसरे ही मनोभाव के रूप में बदल गयी! जब मैं कीर्तन के समय या घर पर एकान्त ध्यानावस्था के क्षणों में कृष्ण का ध्यान करने लगती तो उनकी साँवरी, सलोनी छबि मेरे मन की आँखों के आगे राधामोहन शर्मा के रूप में बदल जाती। मैं इस भाव को भयंकर पाप समझ कर कितना ही छटपटाती, अपने चंचल मन के साथ भयंकर लड़ाई लड़ती, पर मेरे सब प्रयास विफल जाते—राधामोहन शर्मा किसी प्रकार मेरे मन से हटते ही न थे। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि मैं इस तरह पागल हो जाऊँगी और इस प्रकार की कलुषित भावना को मन में पोषित करने की अपेक्षा मैंने आत्महत्या कर लेना बेहतर समझा। पर मेरा युग-युग-व्यापी हिन्दू संस्कार आत्महत्या को उससे भी भयंकर पाप समझता था, इसलिये उसके लिये भी हिम्मत नहीं पड़ती थी। मैंने कई बार सोचा कि अपने मन के उस द्वन्द्व को आपके आगे व्यक्त करके अपने जी का भार कुछ

हल्का करूँ और आपसे हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करूँ कि मुझे किसी उपाय से इस घोर पाप से बचाइये। पर अपने—विशेष कर अपने मन के भावों के प्रति—आपकी निपट अवज्ञा देखकर आपसे इस सम्बन्ध में कुछ भी कहने का साहस मुझे नहीं होता था।

'जिस प्रकार पुरुष समाज के कीर्तन-परिचालक वह थे, उसी प्रकार स्त्री-समाज की परिचालिका मैं थी। इसलिये जब चिक की परली पार उनकी दृष्टि जाती होगी तो वह निश्चय ही मेरे प्रत्येक हाव-भाव, प्रत्येक मुद्रा पर गौर करते होंगे। जब से मैं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुई तब से न चाहने पर भी गाते समय मेरे मन में यह ध्यान प्रतिक्षण रहता कि राधामोहन जी चिक के उस पार से मेरी ओर देख रहे हैं और मेरा गाना सुन रहे हैं। इसलिये मैं बरबस अपने सुर को अधिक आकर्षक बनाने के प्रयत्न में दत्तचित्त रहती।

'एक दिन उनके घर की स्त्रियों ने, जिन में एक उनकी पत्नी और दूसरी उनकी विधवा बहन थी, किसी पुण्य अवसर पर अपने घर में अखण्ड कीर्तन कराने का निश्चय किया और दूसरी स्त्रियों के साथ मुझे भी निमन्त्रित किया। निमन्त्रण के दिन जब मैं राधामोहन के यहाँ गई तो वह दरवाज़े पर हम लोगों के स्वागत के लिये स्वयं खड़े थे। अपनी भावपूर्ण आँखों में स्निग्ध मुस्कान का संयत आभास झलकाते हुए उन्होंने मेरी ओर देखा। उनकी उस दृष्टि में मुझे एक ऐसी निराली प्रीति की अन्तर्वेदना छिपी जान पड़ी जिसने सीधे मेरे मर्म में जाकर चोट पहुँचायी। उस दिन हम दोनों ने पहली बार एक दूसरे को आमने सामने, बिना किसी चिक के व्यवधान के, देखा था। इसलिये वैद्युतिक चुम्बक की सूक्ष्म तरंगें किसी रोक-टोक के बिना एक दूसरे की आत्मा के साथ सीधी टकराने लगीं। केवल क्षण भर के लिये उनसे मेरी चार आँखें हुई होंगी उतने ही में किसी अज्ञात रहस्यमयी

शक्ति के जादू ने एक अनन्तव्यापी मोहजाल हम दोनों के आगे फैला दिया—मुझे ऐसा लगा।

'जब मैं भीतर जाकर कीर्तन मण्डली के बीच में बैठी, तो मेरी आत्मा का एक एक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परमाणु 'राधामोहन! राधामोहन!' की रट लगाने लगा। उनको 'राधामोहन' नाम भी जैसे किसी दैवी चक्र ने रख दिया हो! उस दिन सम्पूर्ण आत्मा से केवल उन्हीं को ध्यान में रखकर मैं कीर्तन करती रही। दिन भर और रात भर के अखण्ड कीर्तन के बाद जब दूसरे दिन मैं घर वापस जाने लगी, तो वह फिर दरवाजे पर खड़े थे। मुझे देखकर उन्होंने अपने भाव-विभोर आँखों में कृतज्ञता झलकाते हुए मेरी ओर हाथ जोड़े। मैं इस बार भी क्षण भर से अधिक उनकी ओर न देख सकी। पर उतने ही समय के अन्दर फिर एक बार उसी वैद्युतिक चुम्बक की तरंग ने मेरी आत्मा को पूरी शक्ति से आन्दोलित कर दिया। ताँगा खड़ा था। मेरे साथ की दो स्त्रियाँ पहले ही बैठ चुकी थीं। अन्त में मैं पीतल का डंडा पकड़कर ऊपर उठी! मेरे बैठने के पहले ही ताँगावाले ने भूल से घोड़े को हाँक दिया। अचानक झटका लगने से मेरा हाथ डंडे से फिसल गया और मैं बुरी तरह गिर गयी होती, यदि ऐन मौके पर राधमोहन बाबू, जो वहीं पर खड़े थे, मेरा हाथ पकड़ न लेते।

'उनके हाथ के स्पर्श से वैद्युतिक चुम्बक की तरंग ने मेरी आत्मा के क्षेत्र को एकदम त्याग दिया और बाहर, शरीर के क्षेत्र में, व्याप्त होकर उसने ऐसे तूफ़ानी ताल से हिलोरें लेना आरम्भ कर दिया जो मेरे लिये जीवन में एकदम नया अनुभव था। जब मैं घर पहुंची तो मेरे हृदय के आस-पास एक अनोखे प्रकार की फड़-फड़ाहट-सी होने लगी—बीच-बीच में ऊपर पसलियों में एक तीखी पीड़ा के साथ। उसी दिन से उस घातक रोग के कारण आक्रमण का सूत्रपात हुआ जिसके कारण दो वर्ष बाद मेरी मृत्यु हो गई। महाशय! उस साधारण घटना की प्रतिक्रिया ऐसे विकट रूप से मेरे भीतर होने लगी कि

में प्रति पल भीतर से भी छटपटाने लगी और बाहर से भी। यदि आपने मेरे शरीर और मन के इस तूफ़ानी परिवर्त्तन चक्र पर समय रहते ध्यान दिया होता, तो सम्भव है मैं किसी क़दर बच जाती। पर आपने वास्तविकता से कतराने के कारण यथार्थ परिस्थिति को जानने की चेष्टा कभी नहीं की और केवल डॉक्टरी इलाज कराके आपने अपना कर्त्तव्य पूरा हुआ समझ लिया। यह आपकी बड़ी भूल थी, जैसे कि अब आप महसूस करने लगे हैं। उसकी प्रतिक्रिया अभी काफी लम्बे अर्से तक आप के भीतर चलती रहेगी।'

इतना पढ़ते ही वकील साहब की नींद उचट गयी। कुछ देर तक वह आँखें मलते रहे, उसके बाद इधर-उधर देखने लगे। जब कुछ न दिखाई दिया तो पलँग पर से उठकर 'प्लेनचेट' के पास गये—यह देखने के लिये कि उसके नीचे कागज़ में सचमुच कुछ लिखा है या नहीं। उनकी निराशा और विस्मय की सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि 'प्लेनचेट' के नीचे का कागज एक दम कोरा पड़ा हुआ है।

वह सोचने लगे—'तब क्या ब्रजेश्वरी की प्रेतात्मा स्वप्न में उनके पास आयी थी, जागरण-अवस्था में नहीं? हाँ, वह स्वप्न ही तो था, हालाँकि वह जागरण-अवस्था से भी अधिक प्रत्यक्ष सत्य मालूम होता था। पर यह कैसे मान लूं कि, चूंकि उसने स्वप्नावस्था में आकर अपना बयान लिखा, इसलिये वह असत्य है? प्रेतात्माएं जिस सूक्ष्म अवस्था में अपना जीवन बिताती हैं उसमें यही अधिक सम्भव है कि वे स्वप्न की सूक्ष्म अवचेतन-अवस्था में ही हम लोगों के अधिक निकट आ पाती हैं। यदि ब्रजेश्वरी की प्रेतात्मा का आना सत्य नहीं है तो उसका जो अनोखा बयान मैंने स्वप्न में पढ़ा है उसकी बहुत सी बातों की कल्पना ही मेरे मन में कैसे उदित हो गयी, जिनके सम्बन्ध में मैंने कभी कुछ सोचा न था?'

उन्होंने निश्चय किया कि वह अपने पड़ोस को कीर्तन-समिति में जाकर

इस बात का पता लगायेंगे कि वहाँ राधामोहन शर्मा नाम के कोई सज्जन हैं कि नहीं। उसी दिन वह नहा-धोकर नाश्ता-वाश्ता करके पता लगाने चल पड़े। कीर्तन-समिति में जाकर पूछतांछ करने पर मालूम हुआ कि वहाँ राधामोहन शर्मा नाम के कोई सज्जन कभी नहीं आये। बाद में किसी ने इस तथ्य की ओर वकील साहब का ध्यान दिलाया कि पास ही एक सज्जन राधामोहन शर्मा नाम के रहते हैं जो कीर्तन-समिति में कभी नहीं आते, पर अपने ही घर में रात आधी रात जब मौज आयी, हारमोनियम बजा कर गर्दभ स्वर में निराली आलापबाज़ी के साथ गाने लग जाते हैं और मुहल्लेवालों की नींद खराब करते हैं। अचानक वकील साहब को याद आयी कि वह इस राधामोहन को अच्छी तरह जानते हैं। वह एक्साइज़ ऑफ़िस में एक साधारण क्लर्क था और एक बार एक मुवक्किल को लेकर उनके पास आया था। उसकी अर्द्धरात्रि के विकट अलाप से स्वयं वकील साहब की नींद कई बार नष्ट हो चुकी थी। उन्हें याद आया कि ब्रजेश्वरी की प्रेतात्मा का स्वप्न देखने के पहले जब वह सोने की तैयारी कर रहे थे तो वही राधामोहन हारमोनियम बजाता हुआ गला फाड़-फाड़ कर अलापबाज़ी कर रहा था। तब क्या उनके उस सारे स्वप्न के मूल में केवल उसी राधामोहन नाम के गधे की अलापबाज़ी थी? वकील साहब बहुत देर तक इसी प्रश्न पर विचार करते रहे! पता नहीं उनके अन्तर्मन ने इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया।

चार आने पैसे

पटरियों के बीच में पड़ी हुई लाश जब स्ट्रेचर पर रख कर ऊपर प्लेटफार्म पर लाई गई तो देखनेवालों की भीड़ जम गयी। पर जो कोई भी एक बार उस पर नज़र डालता था वह आतंक से सिहर कर किसी अज्ञात शक्ति के धक्के से उसी दम, बरबस दो क़दम पीछे हट जाता था। किसी भी प्राणी की आकृति आहत या मृत अवस्था में इस कदर विकृत और भयानक हो सकती है, इस बात की कल्पना इसके पहले कोई नहीं कर सकता था। मृत व्यक्ति की नाक और बांई आंख भी कौड़ी की तरह उछल कर ऊपर उठ आयी थी। कलेजा और फेफड़ा छाती की कचूमर निकली हुई पसलियों को भेद कर बाहर निकल आए थे और अंतड़ियाँ भी पेट को फाड़ कर साफ़ दिखाई दे रही थीं। हाथों और पांवों की उंगलियाँ इस क़दर कुचल गयी थीं कि उनका कहीं नाम निशान नहीं था और हथेलियाँ और गोड़, मांस के कुछ विचित्र ।पण्डों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गए हैं।

आकृति से मृत व्यक्ति की शिनाख्त करना असम्भव था; पर उसकी जेब से दो-तीन पत्र मिले जिनसे उसके सम्बन्ध में बहुत सी बातों का पता लगा। इनके अतिरिक्त "एक्ससाईज़ बुक" के कुछ पन्ने भी मिले जिनमें रोजनामचा के रूप में कुछ लिखा गया था।

मालूम हुआ कि उसका नाम केशरीशरण था। वह किसी नौकरी की आशा से कलकत्ते आया था। किसी एक कबिराजी औषधालय के मालिक ने

दुर्घटना के कुछ समय पूर्व अखबारों में इस आशय का विज्ञापन छपाया था कि उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो उनकी ईजाद की हुई एक नयी पेटेन्ट औषधि का प्रचार युक्तप्रान्त में कर सके। उस नौकरी के लिये केशरीशरण ने आवेदन-पत्र भेजा था। उसके उत्तर में कविराज महोदय ने लिखा था कि वह अपने ही खर्च से कलकत्ते आकर उनसे मिलकर व्यक्तिगत रूप से बातें करें तो अच्छा हो। वह किसी प्रकार टिकट के पैसों का प्रबन्ध कर बिना कुछ सोचे विचारे बनारस से चल पड़ा। कलकत्ते पहुंच कर किसी एक धर्मशाला में उसने डेरा डाला और फिर वहां से सीधे कविराज महोदय के पास जा पहुंचा। कविराज महोदय ने बड़े मीठे शब्दों में उसका स्वागत किया। उसके बाद उन्होंने एक लम्बी—चौड़ी भूमिका बांधी, जिसमें उन्होंने अपनी नवाविष्कृत औषधि की काफी से बहुत ज्यादा प्रशंसा कर डाली। वह दवा किस प्रकार किसी भी क्षीणकाय पुरुष को सिंह का बल प्रदान कर सकती है, इसके प्रमाण में उन्होंने अपनी चौड़ी छाती, विशाल भुजाएं और उन्नत ललाट की ओर केशरीशरण का ध्यान आकर्षित किया। बोले—'मैं पहले आप ही के समान दुबला और नि:शक्त था और साक्षात् प्रेतात्माओं की तरह मेरी शक्ल थी। पर जब से मैंने नियमित रूप से इस 'महाप्राणेश्वरी बटिका' का सेवन आरम्भ किया तब से मेरे शरीर के भीतर के सब रोग वीज सहित नष्ट हो गये और मैं कैसा पहलवानों की तरह तगड़ा बन गया हूं, इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण के बतौर मैं आपके सामने मौजूद हूं।'

केशरीशरण चुपचाप मौनभाव से उनकी सब बातें सिर झुकाये सुनता रहा। उसके बाद कविराज महोदय काम की बात पर आये। बोले—'बात यह नहीं है कि इस दवा की बिक्री युक्तप्रांत को छोड़ कर और सब प्रांतों में इस तेजी से होती है कि हम लोग अक्सर 'डिमांड' के अनुसार 'सप्लाई' नहीं कर पाते। जगह—जगह से लोग इसकी एजेन्सी के लिए दौड़ें चले आते हैं और नकद रुपया देकर हजारों का माल ले जाते हैं। इसलिए मुझे लाभ

की कोई चिन्ता नहीं है । मैं युक्तप्रांत में इसका प्रचार केवल इसलिये चाहता हूं कि मानवता के नाते वहां की दीन—हीन जनता की कुछ स्वास्थ्य—सम्बन्धी सेवा कर सकूं । जिसे आपको मैंने अपने पास केवल यह सूचित करने के लिये बुलाया है कि आप भी यदि अपने प्रांत की जनता की निःस्वार्थ सेवा में हाथ बटाना चाहें तो यह अच्छा अवसर है । आप अभी कम से कम पांच सौ का माल हमारे यहां से ले जाइये । आपको मैं घाटा सहकर भी सौ में बीस रुपया कमीशन दूंगा । आप चार सौ रुपया नक़द जमा करके हमारी दवा ले जाइए और युक्तप्रांत में उसका प्रचार कीजिए । '

केशरीशरण कविराज महोदय की बातें सुनकर स्तब्ध रह गया । वह यह सोच कर बनारस से दौड़ा हुआ आया था कि कविराज जी ने वेतन संबन्धी बातें तय करने के उद्देश्य से उसे बनारस से बुलाया है । पर यहां आने पर मालूम हुआ कि वेतन की तो कोई बात ही नहीं है, उल्टे उससे चार सौ रुपया मांगा जा रहा है । इस भयंकर धोखेबाज़ी ने उसे इस कदर मर्माहत कर दिया कि कुछ देर तक उसकी आंखों के आगे एकदम अन्धकार छा गया और उसे चक्कर आने लगा । कुर्सी का सहारा पकड़ कर उसने किसी तरह अपने को गिरने से बचाया । उसके बाद बिना एक शब्द भी बोले वहां से उठकर चल दिया ।

विशाल कलकत्ता शहर की जनता के बीच में सम्मिलित होकर वह सोचने लगा कि अब उसे क्या करना चाहिये और कहां जाना चाहिये ! उसकी उस समय की स्थिति की असाधारणता ऐसी भयावह थी कि जिस पर स्थिर मन से विचार करना उसके बूते के बाहर की बात थी, इसलिये वह बलपूर्वक अपने मन की यथार्थ भावना को दबाने की पूरी चेष्टा करने लगा और उसने अपने से बाहर की बातों पर दिलचस्पी लेनी चाही । पर बाहर की यथार्थता उसके भीतर की यथार्थता से कुछ भी कम आतंककारी नहीं थी । दोनों ओर के फुटपाथों पर असंख्य मरभुखे दारुण क्षुधा की ताड़ना से विकल हो कर अत्यन्त करुण भावसे कराहते हुए

क्षीण कंठ से भोजन की प्रार्थना कर रहे थे। बहुत से ऐसे थे जिन्हें कई हफ्ते बिना भोजन के बीत चुके थे और जो एक शब्द भी मुंह से निकालने में असमर्थ हो गये थे। इन अन्तिम सांसें लेते हुये मरभुखों के शरीर की एक-एक हड्डी और पसली बड़ी आसानी से गिनी जा सकती थी। एक स्थान पर एक माता अपने दो बच्चों के साथ जिनकी उम्र पांच—साल के क़रीब होगी—फुटपाथ पर लेटी हुई थी। तीनों अस्थि—कंकालों के रूप में अवशिष्ट थे और उनके श्वास लेने के ढंग से मालुम होता था कि कुछ ही मिनटों के मेहमान हैं। एक गली के नुक्कड़ पर केशरीशरण ने देखा कि नाली के पास कुछ गंदी, सड़ी हुई चीज़ पड़ी हैं। एक क्षुधार्त बालक उससे अपनी भूख की सर्वभक्षी आग बुझाने के उद्देश्य से वहां पहुँचा। उसने अपने हाथ से उसे स्पर्श किया ही था कि प्रायः आठ वर्ष के एक दूसरे लड़के ने पूरी ताक़त से पहले बालक को धक्का दिया और घुटने टेक कर उस अतिशय गंदे पदार्थ को अपनी ज़बान से साफ करने लगा। उस दिल दहलानेवाले दृश्य को देख कर एक अनोखी सिहरन केशरीशरण के सिर से लेकर पांव तक दौड़ गई। कुछ क्षण के लिये उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं। उसके बाद वह दूसरे फुटपाथ पर चला गया। वहां भी नंगों और भूखों का ऐसा ही तांता लगा हुआ था। न जाने किन अज्ञात अन्धगुहाओं से बाहर निकल कर यमराज की सेना में भरती होने के लिये ये प्रेतात्माएं टिड्डीदल की तरह कलकत्ते की सड़कों में छायी हुई थीं!

केशरीशरण को याद आया कि एक बार एक आदि-अन्त-रहित टिड्डीदल उत्तर से दक्षिण की ओर जाता हुआ सारे गांव के ऊपर बादलों की तरह छा गया था और उसने वास्तव में सूर्य को कुछ समय के लिये ढंक दिया था। उसके कुछ ही समय बाद अचानक घने काले बादल उमड़ कर आकाश में छा गये और देखते-देखते ऐसे ज़ोरों से पानी बरसने लगा कि करोड़ों अरबों टिड्डियां पंखों

के भींग कर गल जाने के कारण सब ज़मीन पर आ गिरीं और फुट्-फुट् शब्द में उछलती हुई राहगीरों के पैरों से आ कर लिपटने लगीं।

भूख के कारण अधमरे अथवा मरणासन्न मंगतों का वह अपार टिड्डीदल केशरीशरण को उस दिन वर्षा से भींगे हुए टिड्डियों की याद दिलाता था। एक बार तीन-चार क्षुधार्थों ने एक साथ उसके पांव मज़बूती से पकड़ लिये। न जाने उन मृतप्राय प्रेतात्माओं की हड्डियों में उतना बल कहां से आ गया था! केशरीशरण अपने पांव को छुड़ाने में समर्थ न हुआ। वह पांवों को छुड़ाने के लिये ज़ोर लगाना चाहता था, पर उसका सारा ज़ोर जैसे किसी ने पहले ही छीन लिया हो। उसे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि विशेष रूप से उसके ही पांव उन मरभुखों ने क्यों पकड़े! क्या सोच कर उन लोगों ने उससे भोजन पाने की आशा की जब कि वह स्वयं अपने लिये एक दिन के भोजन का ठिकाना लगाने में असमर्थ है!

किसी तरह उसने अपने को छुड़ाया और पास ही एक दुकान से चार आने की लैया खरीद कर उन लोगों में बांटना शुरू किया। पलक मारते ही प्रायः सौ मरभुखों ने उसे घेर लिया और लैया छींनने के लिये कौवों और चीलों की तरह उस पर टूट पड़े। कठिनाई के बाद अपने को मुक्त करके और उन प्रेतात्माओं को आपस में छीना झपटी करने के लिये छोड़ कर अत्यन्त विभ्रांत अवस्था में केशरीशरण आगे बढ़ा। पर मरभुखों का कहीं अन्त नहीं था। उन मरभुखों से उसकी अन्तरात्मा का क्या निगूढ़ सम्बन्ध है, इस विषय पर अपने अज्ञात मन में विचार करता हुआ अन्यमनस्क भाव से आगे बढ़ा चला जा रहा था।

वह सीधा चला जा रहा था और उसे स्वयं पता नहीं था कि वह कहां जा रहा है। जब क्लाइव स्ट्रीट की विशालकाय, गगनभेदी अट्टालिकाओं के पास पहुंचा तो अविरतगामी मोटरों के भोंपुओं के कारण उसकी योगनिद्रा की-सी अवस्था भंग हुई और उसमें चेतनता आयी। उसे याद आया कि उसने कल

दोपहर से अभी तक कुछ खाया नहीं है और जिस लैंया को वह अभी अधमरे या मरणोन्मुख भिखमंगों में बांट आया है उसकी आवश्यकता उसे अपने लिये कुछ कम नहीं है। उसने अपनी जेब टटोल कर कुछ पैसे निकाल बाहर किए और उन्हें गिनने लगा? गिनने पर मालूम हुआ कि उसमें कुल मिलाकर उतने पैसे भी नहीं जितने से पटना तक के लिये तीसरे दर्जे का टिकट खरीदा जा सके। पटने में उसका एक मित्र नौकर था जिसने बनारस में समय असमय उसकी आर्थिक सहायता की थी। उसका अन्तर्मन बहुत दिनों से यह सोचे बैठा था फिलहाल यदि नौकरी का कोई ठिकाना नहीं लग पाया तो कुछ समय तक पटने में अपने उसी पूर्व-परिचित मित्र के यहां जा कर विश्राम करेगा और उससे सलाह लेकर अपने भावी जीवन का कार्यक्रम निश्चित करेगा। पर; अब यह यथार्थता विकराल रूप धारण करके उसके सामने आ खड़ी हुई कि पटने जाने के लिये किराया कहां से जुटाया जाय।

उसने फिर हिसाब लगा कर देखा तो ठीक चार आने कम निकले। यदि चार आने पैसे उसने भिखमंगों को लैंया बांटने में खर्च न किए होते, तो वह भूखा रह कर भी स्टेशन तक पैदल चल कर, पटने का टिकट कटा कर चल देता पर अब कोई चारा नहीं था और उतने पैसों पर वह पटने से इधर चाहे कहीं चला जाय, पर पटना नहीं जा सकता था। और दो दिन से भूखे पेट की यह ज्वाला! उसे कैसे शांत किया जाय? उसे कुछ खाना ही होगा। पर फिर उसके बाद? उस परदेश में, जहां के लाखों निवासियों में से एक भी व्यक्ति से उसका परिचय नहीं है, न किसी अपरिचित सज्जन से किसी प्रकार की सहानुभूति पाने की ही कोई आशा है, वह कई दिन इस तरह बिता सकता है?

वह फिर अन्यमनस्क हो चला था। इतने में एक कार ड्राइवर ने बड़ी तीखी और कर्कश आवाज़ में प्रायः उसके कान के पास हार्न बजाया। वह चौंक उठा और एक क़दम बांई ओर हटने के बजाय हड़बड़ी में दाहिनी ओर हटा।

न जाने आदृश्य से भाग्य के किसी रहस्यमय चक्र से बाहर मोटर से दबने से बाल-बाल बच गया।

उस दुर्घटना से बचने के बाद वह अपने लडखड़ाते हुए पांवों को दृढ़ता से ज़मीन पर जमाने की कोशिश करने लगा, पर जैसे वे जमना ही नहीं चाहते थे। एक तो दो दिन से पूर्ण अनशन, तिस पर परिस्थिति की अनिश्चितता और तिस पर भी मोटरों से बड़े-बड़े बैंकों, फर्मों और कम्पनियों के मालिकों अथवा कारिन्दों की यात्रा!

वह सोचने लगा कि हजारों लाखों मर भूखे मृत्यु का ग्रास बन चुके है, इन पर लोगों के कानों में जुं तक नहीं रेंगती! इस घोर अकाल और महंगाई के ज़माने में भी वे लोग वैसे ही अकड़ते चले जा रहे हैं जैसे लड़ाई के पहले—बल्कि इस समय उनका अकड़ना पहले से कई गुना अधिक बढ़ गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि लड़ाई के कारण प्रत्येक व्यवसाय पहले से कई गुना अधिक लाभप्रद हो गया है। लाखों अन्न-पीड़ितों के रक्त चूसने पर भी यदि ये लोग मोटे न हों तो कौन होगा? पर ये लोग दयालु भी हैं! केशरीशरण के अन्तर्मन के किसी कोने में छिपा हुआ कोई परिहासक विद्रूप के स्वर में उसके कानों में कह रहा था—हां, ये लोग बड़े दाता भी हैं! जिस व्यक्ति ने कम से कम एक मन खून चूसा हो, यदि वह समय पर उन्हीं शोषितों के लिए दान के बतौर अपने शरीर में से एक पिन की नोक के बराबर खून निकालने को तैयार हो जाय और उस दान का प्रचार अपने ही द्वारा परिचित पत्रों के ज़रिये करके देश भर में सुयश का भागी बन जाय, तो यह क्या कम महत्व की बात है!

सोचते-सोचते उसके भूखे प्राणों में एक प्रलयंकर प्रतिहिंसा की उत्तेजना की तार झनझना उठीं। यदि अपने अन्तर के उस क्रोध और हिंसा की ज्वाला का एक सौवां हिस्सा भी वह बाहर निकालने में समर्थ होता तो क्लाइव

स्ट्रीट की तमाम इमारतें निश्चय ही उसी समय जल कर खाक हो जातीं। पर उस नपुंसक आक्रोश की आग केवल उसी के अन्तर को जला कर रह गयी।

वह गिरता-पड़ता अन्यमनस्क भाव से आगे बढ़ा और कुछ दूर जा कर बाईं ओर मुड़ गया। वहाँ एक स्थान पर वह बिना कुछ सोचे क्षण-भर के लिये ठहर गया। सामने एक बहुत बड़ी इमारत थी। पीतल के रंग के बड़े-बड़े चमकदार अक्षरों को पढ़ने से मालूम हुआ कि वह एक प्रसिद्ध बैंक है।

केशरीशरण बिना कुछ विचार किये सीधे बैंक के भीतर चला गया। बन्दूक, संगीन और खुखरी धारी नेपाली दरवान ने नहीं टोका। वह क्यों भीतर जा रहा है और क्या उसका उद्देश्य है, यह वह स्वयं नहीं जानता था वह सीधा उस खिड़की के पास जा कर ठहर गया जहां रुपये जमा हो रहे थे। नोटों के पुलिन्दे के पुलिन्दे गिने जा रहे थे और थोड़ी सी कागजी कार्रवाई के बाद भीतर ही भीतर गुम हो जाते थे। जिस खिड़की के पास रुपया जमा करनेवालों की भीड़ थी उसमें थोड़ी ही दूर पर एक दूसरी खिड़की में चेक भुनानेवालों का ताँता बंधा हुआ था। बाहर मर भुखों का टिड्डीदल देख कर जो विचित्र भावना केशरीशरण के मन में जगी थी, बैंक के भीतर रुपया जमा करने और चेक भुनाने की क्रिया प्रतिक्रिया का चक्र देख कर एक दूसरी ही दुनिया का नज़ारा उसकी आँखों के आगे फिरने लगा। क्या दुनिया में सचमुच इतनी ग़रीबी है, जैसी कि वह मरभुखों का चीत्कार सुन कर और अपने पेट की ज्वाला और अपनी अनाथ और असहाय परिस्थिति की विवशता का अनुभव करने के बाद सोचने लगा था?

और; यह सोचते ही उसका हाथ अनायास ही अपनी जेब के भीतर चला गया। उसमें से कुल पैसे निकाल कर उसने फिर एक बार उन्हें गिना। इस दुबारा गिनने से उसकी परिस्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। अर्थात् पटना के टिकट के लिये वही चार आने पैसे इस बार भी कम निकले। 'मुझे चार

आने पैसे चाहिए ! चार आने पैसे चाहिये ! मैं पटना को भागना चाहता हूं ! पटना ! पटना ! यहाँ मैं मर जाऊंगा, पागल हो जाऊंगा ! पर कहाँ से चार आना पैसे पावें ? किससे मांगू ? कौन देगा ? और; मर भुखे!...' मन-ही-मन इस तरह छड़बड़ाते हुए वह एक टक दृष्टि से खिड़की के भीतर देख रहा था जहाँ बैंक का कर्मचारी हजारों रुपयों के पुलिन्दे एक-एक करके खोल कर अत्यन्त उदासीन भाव से गिन रहा था। 'तो क्या मैं एक बार चील-झपट्टा मारूं इन पुलिन्दों पर ?'—उसके भीतर आदिम-युग की बर्बर प्रेतात्मा ने निपट नादानी से यह प्रश्न किया। उसके सचेत मन ने कोई उत्तर इस बेतुके प्रश्न का नहीं दिया। पर चार आने पैसे कहाँ से आवें तो क्या किसी की जेब पर हाथ साफ किया जाय ? हर्ज क्या है ? वे सब लोग रुपया जमा करने का क्या अधिकार रखते हैं जब कि मुझ जैसे असंख्य स्त्री-पुरुष उनकी आंखों के सामने दाने-दाने को मुहताज हो कर तड़प-तड़प कर प्राण दे रहे हैं ? ठीक है, मैं या तो किसी का गला घोंट कर, लूट कर, अपने प्राण बचाऊंगा या स्वयं अपना गला घुटवाऊंगा ! उसे यह सोच कर आश्चर्य हो रहा था कि जब वह बनारस से कलकत्ते को रवाना हुआ था, तो इस तरह के तूफानी और खूनी विचारों का लेश भी उसके सचेत मन में वर्त्तमान नहीं था। एक ही दिन में यह प्रलयंकर परिवर्त्तन कैसे सम्भव हुआ ?

इस प्रकार के विचारों में वह ऐसा तन्मय हो गया था कि उसका दाहिना हाथ कब और कैसे उसके बगलवाले व्यक्ति की कुर्ती की जेब के पास पहुंच गया था, इस बात का पता ही उसे नहीं था। जब एक दूसरे आदमी ने पीछे से आ कर उसे ठेला, तो उस धक्के के फलस्वरूप केशरीशरण की तनिक भी चेष्टा के बिना ही उसका हाथ पूर्वोक्त व्यक्ति की जेब के एकदम भीतर ही जा फंसा। वह व्यक्ति एक काले रंग का हट्टा कट्टा बंगाली था, जिसके स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष ही बंगाल के घोर दुष्काल का तनिक भी असर नहीं पड़ने पाया था। उसने उचक कर एक हाथ से केशरीशरण का गला पकड़ा और दूसरे हाथ से

उसके बांए गाल में ऐसे ज़ोरदार तमाचे जड़ने शुरू किये कि बेंक के अन्दर के सारे जन-समूह का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो गया। वह भयावनी आकृतिवाला बंगाली तमाचे जड़ते हुए चिल्ला कर बोल रहा था—'शाला पाकेट मार! हमारा पाकेट काटने मांगता है शाला! जानता है हम मिलिटरी का लोक है, शाला! हम तुम्हारे मोतो सात लोक का खून करके बीच रास्ते में फेंक देगा, तो भी हम लोक का कुछ नहीं बिगाड़ने शकता, शाला!' वह झूठ कह रहा था, वास्तव में वह बदले हुए वेश में पेशेवर गुण्डों के गिरोह का एक आदमी था।

केशरीशरण पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध और निश्चेष्ट खड़ा था। वह 'बंगाली मोशाई' की ओर सीधा देखता हुआ भी कुछ नहीं देख रहा था। उसे सब तमाशबीन अपने चारों ओर चक्कर काटते हुए मालूम हो रहे थे। बैंक की ऊंची छत एक बार नीचे उतरती हुई मालूम होती थी और फिर ऊपर को चढ़ती हुई।

पता नहीं, दो दर्शकों ने क्या सोच कर केशरीशरण का पक्ष लिया, जिसका फल यह हुआ कि उस बार वह पुलिस का अतिथि बनने से रह गया। नेपाली दरवान ने उसका हाथ पकड कर एक धक्के से बाहर निकाल दिया। असीम आत्मग्लानि, बिश्वव्यापी निराशा और पेटव्यापी भूख के बावजूद की न जाने किस अज्ञात रहस्यमयी अन्तःशक्ति के प्रतिरोध से वह उस धक्के से भी संभल गया और फुटपाथ पर गिरते-गिरते बच गया।

वहाँ से गिरता-पडता वह किसी तरह डलहौज़ी स्क्वायर पहुंचा और एक बेञ्च पर लेट गया। कुछ देर तक चरम भ्रांति की अवस्था में उसका सिर चक्कर खाता रहा और निराली, परिभाषाहीन, भौतिक दुःस्वप्नों की छाया मूर्तियाँ उसकी बन्द आंखों के आगे मंडराने लगीं। उसके बाद अचानक किसी पागल प्रेरणा से वह चौंकता हुआ-सा उठ खड़ा हुआ और पास ही एक खोमचेवाले से कुछ

पैसों की मूंगफलियां और चने खरीद कर जल्दी-जल्दी खाने के बाद पास ही एक नल से पानी पी कर वह चल पड़ा।

अनमने भाव से बहुत दूर तक चले जाने के बाद जब उसने यह जानना चाहा कि वह कहां आ पहुंचा है, तो उसे मालूम हुआ कि वह स्ट्रैंड रोड में हवड़े के बहुत करीब पहुंच चुका है। ठीक है, मुझे पटना जाना है—यह सोचता हुआ वह तेज़ी से कदम बढ़ाता हुआ चलने लगा, हरिसन रोड के चौराहे से वह पुल की ओर मुड़ा।

स्टेशन पहुचने पर मालूम हुआ कि पटना जानेवाली एक गाड़ी एक प्लेटफार्म पर लगी हुई है। प्लेटफार्म का टिकट खरीद कर वह भीतर घुसा और बिना कुछ सोचे-समझे इन्टर के एक डिब्बे में जा बैठा।

यात्रियों की बड़ी रेलमपेल थी और इन्टर क्लास में भी सिर फुटौवल की नौबत आ रही थी। केशरीशरण एक कोने में बिना तनिक भी व्यस्तता के स्थिर भाव से बैठा रहा। प्रायः आधे घण्टे बाद गाड़ी चल पड़ी।

अभी तक किसी टिकट इन्सपेक्टर ने टिकट चेक नहीं किया था। जब बर्दवान में गाड़ी ठहरा, तो टी० टी० आई० के आदमी ने उस डिब्बे में प्रवेश किया, जिसमें केशरीशरण बैठा हुआ था। उसे देखते ही केशरीशरण की अन्तःरात्मा बिलबिलायी हुई चीख मार उठी। भीतर प्रवेश करते ही टिकट इन्सपेक्टर की पहली दृष्टि केशरीशरण पर पड़ी। पलक मारते ही उसकी अभ्यस्त दृष्टि जैसे केशरीशरण की स्थिति की असलियत ताड़ गई हो दो आदमियों के टिकट चेक करने के बाद ही वह केशरीशरण के पास गया।

'टिकट ?'

'टिकट नहीं है,'—अत्यन्त धैर्य के साथ केशरीशरण ने उत्तर दिया।

'तब बिना टिकट से भीतर कैसे घुस आए ?'

'क्या करता ! पास में पूरा पैसा नहीं था और मुझे पटना जाना जरूरी था !'

गाड़ी में कहां सवार हुए थे ?'

'हक्के में।'

'ओह, यह बात है! तो चलो हमारे साथ, तुम्हारे टिकट का पूरा बन्दोबस्त किया जायगा।'

यह कह कर उसने केशरीशरण का हाथ मज़बूती से पकड़ लिया और एक झटके में खींच कर उसे बाहर प्लेटफार्म पर ढकेल दिया और उसके बाद स्वयं भी नीचे उतर गया। वहाँ से वह एक अपेक्षाकृत एकांत स्थान में उसे ले गया और तब धीरे से बोला—'तुम्हारे पास कुल कितने पैसे हैं बाहर निकालो।'

केशरीशरण ने अपने कुर्ते की जेब में हाथ डाल कर कुल पैसे निकाल कर दे दिए। 'और निकालो! और निकालो! देर मत करो! अपने लिये फिज़ूल की परेशानी मत मोल लो,' पैसों को अपनी जेब में डालते हुए बड़े इतमीनान से टिकट इन्सपेक्टर ने कहा।

'कह तो दिया, इससे अधिक एक भी पैसा नहीं है।'

इस पर टिकट इन्सपेक्टर ने उसकी तलाशी लेनी शुरू की, इतने में गाड़ी की सीटी बजी और थोड़ी ही देर बाद गाड़ी भक-भक करती हुई चल पड़ी। तलाशी लेने के बाद भी जब टिकट इन्सपेक्टर को सचमुच एक भी पैसा न मिला तो वह बहुत निराश हुआ और उसी निराश में एक थप्पड़ केशरीशरण के गाल में जमा कर वह चला गया।

'अब क्या करना चाहिये ?'—प्लेटफार्म के अन्धेरे हिस्से में टहलते हुए केशरीशरण ने मन-ही-मन कहा—'अब केवल एक ही उपाय हो सकता है। पटना में वीरेन्द्र को तार भेजा जाय कि मैं बर्दवान में नंगाबूचा पड़ा हूं। या तो वह मेरे लिये कुछ रुपये भेजे या स्वयं आ कर मुझे अपने साथ लिवा ले जाय। पर तार के लिये पैसे कहाँ से आवें ? हा: हा: हा: ! हा: हा: हा: ! वह अच्छा मज़ाक रहा! हा: हा: हा: ! जीवन में आज वह

प्रथम बार मुक्त भाव से ठठा कर हंसा। उसके बाद ही उसने सोचा कि यदि तार देने की बात उसे गाड़ी में बैठने के पहले सूझ गई होती तो सम्भवतः उस अजीब परिस्थिति से त्राण पाने की एक क्षीण आशा की जा सकती थी। पर यह भाग्य का निश्चित षड्यन्त्र था कि कब वह उपाय उसे सूझा जब रहे-सहे पैसे भी उससे छिन गए!

'ठीक है! ठीक है! अच्छा हुआ! बहुत अच्छा हुआ! यह सोचता हुआ वह प्लेटफार्म से उल्टी दिशा की ओर अंधेरे में बहुत दूर निकल गया। उसके बाद एक स्थान पर ज़मीन के ऊपर ही चित लेट गया। प्रायः आधे घण्टे तक उसी स्थिति में पड़ा रहा। तब उठा जब सामने से एक गाड़ी 'सर्चलाइट' फेंकती हुई तेज़ी से चली जा रही थी। 'सर्चलाइट' की ओर देख-देख कर वह प्रसन्न हो उठा और फिर एक बार जी खोल कर ठट्ठा कर हंसा। जब गाड़ी एकदम निकट आ गई तो वह आंख मुन्द कर इन्जिन के आगे कूद पड़ा।

दो मित्र

इलाहाबाद,
२४ फरवरी १६४४

प्रिय कामता प्रसाद,

आज सुबह जब मैं 'लीडर' पढ़ रहा था तो लड़ाई की खबरों से उकता कर मैंने यों ही गजटवाले कालम पर दृष्टि डाली। उसमें अचानक तुम्हारा नाम पढ़कर मेरे मन में, जो इधर कुछ समय से अकारण ही उदास रहता हूं, एक अनोखी उत्सुकता छा गई। उसमें मैंने पढ़ा कि तुम डिप्टी सेक्रेटरी से सेक्रेटरी के पद पर पहुंच गये हो। पढ़कर जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन नहीं हो सकता, भाई! तुम से इधर प्रायः पांच साल से मेरी भेंट नहीं हो पायी है, और तुमने पत्र भेजना बिलकुल बन्द कर दिया है। बहुत दिनों से तुम्हारे विषय में जानने की बड़ी उत्सुकता थी। पर हम दोनों इन वर्षों में एक दूसरे से इस कदर दूर हो गए हैं कि आपस में चिट्ठी—पत्री का व्यवहार तक नहीं रखे। न तुम्हें मित्रों को चिट्ठी लिखने की आदत है, न मुझे। तुम्हें इस बात पर विश्वास नहीं होगा कि इधर प्रायः दो वर्षों में मैं नित्य-प्रति तुम्हें पत्र लिखने की बात सोचता, पर प्रतिदिन 'कल' के लिये उस बात को टालता रहा हूं। पता नहीं, आज मन की कौन सी शक्तियां इकट्ठी हो गई हैं, जो मैं तुम्हें पत्र लिखने का निश्चित विचार करके सचमुच लिखने बैठ गया हूं।

भाई, इतना निश्चित है कि चाहे जीवन–भर हम दोनों एक दूसरे को पत्र न लिखें, फिर भी हम लोगों का वह आंतरिक सम्बन्ध कभी नष्ट नहीं हो सकता, जिसकी स्थापना प्राय: तीन वर्ष की उम्र में हुई थी और जो २३ वर्ष की उम्र तक—यूनिवर्सिटी में दोनों की पढ़ाई समाप्त होने के समय तक अटूट रूप में वर्तमान रहा है। अब पांच क्या, यदि पचास वर्ष के लिये भी हम दोनों एक दूसरे से मिल सकें, तो भी उस आन्तरिक सम्बन्ध में नाम को भी अन्तर नहीं आ सकता, मेरा यह निश्चित विश्वास है।

फिर भी, जब मैं कभी एकान्त क्षणों में हम दोनों के बीच की गहरी घनिष्ठता के दिनों की बातें सोचा करता हूं, तो एक पुलक—भरी अनुभूति के साथ ही बरबस एक आह निकल पड़ती है। ऐसे क्षणों में कभी कभी ये प्रश्न मन को बुरी तरह धक्का देने लगते हैं—क्या सचमुच वे दिन स्वप्न थे? जिन परिवारिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के बन्धनों में हम लोग बुरी तरह जकड़ गये हैं, केवल वे ही कठोर तथ्य क्या जीवन के एक मात्र सत्य हैं? रोग—शोक, भय और भ्रान्ति की जो भावनाएं प्रतिपल अपने शिकंजे में प्राणों को इस तरह दबोचे रहती हैं, जिस तरह बिल्ली अपने शिकार को—क्या वे ही केवल जीवन की यथार्थ अनुभूतियां हैं?

कुछ विरले क्षण जीवन में ऐसे भी आते हैं, जब इस प्रकार की समस्त शंकाओं के लिये तिल—भर भी स्थान नहीं रहता और सारी भय—भ्रान्ति का आकाश—पातालव्यापी पर्दा पल में आर—पार फटकर, एक ऐसी रहस्य-मयी अनुभूति सम्पूर्ण मन और प्राण में छा जाती है, जिसे आनन्द की अनुभूति कहें या उन्माद की, कुछ समझ में नहीं आता। उस अनुभूति में वर्तमान के जड़ जीवन सम्बन्धी सारी यथार्थता पृथ्वी के ऊपर की बरफ की तरह पिघल कर, बहकर साफ हो जाती है, और उसके नीचे दबी पड़ी हुई असली मिट्टी के ऊपर की हरियाली अपने नाना—रूपों के साथ स्पष्ट प्रभासित होने लगती हैं। पर उस क्षण की वह पुलकानुभूति प्रतिपल के जीवन में क्यों स्थायी

नहीं रहने पाती ? क्यों तत्काल ब्राह्म जीवन की कुटिल—कठोर यथार्थता सारी आत्मा को धर दबाती है। बरफ़ की उपमा मैंने विशेष रूप से इसलिये दी है कि मुझे अकस्मात उन दिनों की याद आ गयी, जब तुमने और मैंने एक साल हाई स्कूल में—पहाड़ पर साथ साथ पढ़ा था। वह भी एक इत्तफाक की ही बात थी कि पहाड़ पर भी तुम्हारा और मेरा साथ नहीं छूटा। तुम्हारे पिता जी तब हेडमास्टर की हैसियत से पहाड़ पर गये थे, और तुमने मुझे भी वहीं पढ़ने के लिये बुला लिया था। उस साल जाड़ों की छुट्टियों के पहले ही बड़े जोरों की बरफ़ गिरी थी। जीवन में वह एकदम नया दृश्य हम लोगों ने देखा था। कैसे विचित्र आनन्द और उल्लास के दिन थे वे! कहां विलीन से हो गये वे दिन! उनके विलीन होने का उतना दुःख नहीं है, जितना इस बात से मन क्षुब्ध हो उठता है कि उन दिनों की सुखद स्मृतियां भी विरले ही क्षणों में मनमें उदित होतो हैं और पुलकानुभूति जगाते न-जगाते विलीन भी हो जाती हैं। खैर।

आज अपने पिछले जीवन के इतिहास के पन्नों को सरसरी तौर से उलटते हुए अचानक एक ऐसी बात पर मेरा मन अटक गया; जिसका महत्व आज के पहले मेरी समझ में कभी नहीं आया था। तुम्हें याद होगा कि जिस वर्ष तुम्हारा विवाह हुआ, उसी वर्ष मेरा भी विवाह हुआ था। हम दोनों के जीवन के साथ संयोग का जो क्रम आरम्भ से ही चला आया है, वह उसी के बहुत से दृष्टांतों में से एक है। इसी बात का दूसरा महत्वपूर्ण दृष्टांत यह है कि विवाह होने के प्रायः दो साल बाद तुम्हारी पत्नी नें एक लड़के को जन्म दिया, तो उसके दो—तीन ही दिन बाद मेरी पत्नी एक लड़की की माता बन गयी। तब हम दोनों बनारस में रहते थे और विश्वविद्यालय में पढ़ते थे। एक दिन, दोनों जब होस्टल में तुम्हारे कमरे में बैठकर अपने पिता बनने की बात का परिहास परस्पर उड़ा रहे थे, तो अचानक तुम्हारा 'मूड' कुछ गम्भीर हो आया और तुमने कहा, हम दोनों जीवन में इस कदर साथ साथ चले हैं कि

मालूम होता है, हमारे भाग्य–विधाता हमारे इस साथ साथ चलने की क्रिया को अन्त तक स्थायी बनाने के प्रयत्न में अभी सेजुट गये हैं। इसलिये हमें भी अभी से भाग्य–विधाता के इस सदुयोग का स्वागत कर लेना चाहिये। आज हम दोनों एक दूसरे के आगे इस बात के लिये वचन–बद्ध हो जायँ कि आज से बीस बाईस वर्ष बाद उपयुक्त अवसर देखकर हम अपने बच्चों का विवाह एक दूसरे के साथ कर देंगे। तुम्हारी इस बात को उस अल्हड़ उम्र में उस अनुभवहीन वय में भी मैंने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया और एक निराली प्रेरणा की स्फूर्ति से मेरा मन उच्छ्वासित हो उठा।

आज इतने वर्षों बाद उस दिन की बात की याद तुम्हें विशेष रूप से दिलाने की आवश्यकता इस कारण आ पड़ा है कि मेरी समझ में आज वह उपयुक्त अवसर आ गया है। मेरी लड़की सयानी और काफी शिक्षित हो चली है, और ईश्वर की कृपा से तुम्हारा लड़का भी, मैंने सुना है, बहुत समझदार और हर तरह से विवाह–योग्य हो गया है। इसलिये अब हमें चाहिये कि हम लोग उस पवित्र प्रतिज्ञा को जल्दी पूरा कर लें, जिसे हम लोगों ने जवानी की उम्र में, जीवन के एक शुभ्रतम क्षण में किया था।

तुम्हारा
शिवदयाल कपूर

लखनऊ
२७ फरवरी, १९४४

भाई शिवदयाल,

आज मुद्दत के बाद तुम्हारा पत्र पढ़ कर जो हर्ष हुआ, उसकी कल्पना क्या तुम कर सकोगे? सम्भव है। पर मेरे लिये एक बिल्कुल नयी अनुभूति थी। जीवन में जब चारों ओर उथल–पुथल और हड़बड़ी मची हुई है, विश्वव्यापी युद्ध के कारण जब बाहर मरणलीला रची हुई है और भीतर भय, विषाद, जीवन के प्रति विराग और नैराश्य की सफलता छायी हुई है, तब

अकस्मात तुम्हारा अप्रत्याशित पत्र मुझे मिलता है, जिसे पढ़कर मैं भूतकाल के उस विस्मृत लोक में पहुँच जाता हूं, जहां केवल आशा, केवल उल्लास और केवल महत्त्वाकांक्षा–जनित उमंग का वातावरण छाया हुआ था। भाई, मेरे मन में भी तुम्हारी ही तरह प्रश्न करने की इच्छा होती है—कहां गये वे दिन ? वह स्वप्न था या सत्य ? यदि स्वप्न था, तो इस विशेष क्षण में उसकी स्मृति चरम सत्य से भी अधिक वास्तविक क्यों लग रही है ? और यदि वह सत्य था, तो इतने वर्षों तक वह विस्मृति के सागर में डूबा हुआ क्यों अस्तित्वहीन बना रहा ?

कुछ भी हो, एक क्षण के लिये भी उस बीते हुए स्वप्नतुल्य जीवन की याद फिर आने से आज जो सुख मुझे मिला है, वह अपूर्व है, हाँ अपूर्व ! इसके पहले इसका अनुभव मैंने जीवन में कभी नहीं किया था, यह मैं शपथपूर्वक तुमसे कह सकता हूँ।

तुमने जिस प्रतिज्ञा की बात लिखी है, वह मुझे अच्छी तरह याद आ गई है। तुम जानते हो, मैंने किस सच्ची और सहृदय भावना से प्रेरित होकर स्वयं उस प्रतिज्ञा के लिए तुमसे कहा था। इसलिये यदि आज उसे पूरा करने में मैं समर्थ होता, तो मुझे कितनी प्रसन्नता होती, इस बात की कल्पना तुमसे अच्छी तरह दूसरा कोई नहीं कर पायेगा।

पर भाई, जीवन का चक्र जिन विचित्र नियमों के क्रम से चलता है वे मनुष्य की इच्छा की तनिक भी अपेक्षा नहीं रखते। अंगरेजी की इस प्रसिद्ध लोकोक्ति से तुम अवश्य ही परिचित होगे—'Man proposes, God disposes.' मनुष्य बड़ी-बड़ी कल्पनाएं करता है, बड़े-बड़े मनसूबे बाँधता है, पर उन कल्पनाओं के सत्य में परिणत होने की बात ईश्वर की इच्छा पर निर्भर करती है। जीवन की कितनी ही महत्त्वपूर्ण आकांक्षाएं मिट्टी में मिल जाया करती हैं, इस सत्य का परिचय निश्चय ही तुम्हें भी अपने जीवन में मिल चुका होगा।

इस भूमिका से मेरा तात्पर्य यह है कि मेरा बड़ा लड़का नरेन्द्र स्वतन्त्र विचारोंवाला नवयुवक है। उसने निश्चित रूप से मुझे और अपनी माँ को यह जता दिया है कि हम लोग उसके विवाह के मामले में तनिक भी हस्तक्षेप न करें। उसने इस बात की धमकी दी है कि यदि हम लोग बिना उससे परामर्श किये उसके विवाह की बातचीत चलावेंगे, तो वह घर से निकलकर किसी अज्ञात स्थान को चल देगा। तुम्हारा पत्र मिलने पर मैंने उसे एकान्त में बुलाकर अपनी प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में सारी बात उसे समझाई और उसे तुम्हारी लड़की के साथ विवाह के लिए राज़ी करना चाहा। पर भाई, सुनते ही उसका चेहरा तमतमा उठा, और उसने भयंकर विरोध का भाव प्रकट करते हुए केवल एक वाक्य कहा—'एक अनजान लड़की से मेरा विवाह तय करके आप मेरे साथ भयंकर अन्याय करना चाहते हैं।' यह कहकर वह चला गया। वह अधिक नहीं बोलता, इसलिये उसका यह एकमात्र वाक्य मेरे लिये काफी इशारा था। मैं समझ गया कि इस सम्बन्ध में उसपर तनिक भी दबाव डालने की चेष्टा करने से मामला गम्भीर रूप धारण कर सकता है। इसलिये इसके बाद मैंने फिर एक शब्द भी इस विषय में उससे नहीं कहा। तुम जानते हो भाई, मैं बड़ा स्नेही पिता हूं (और सच पूछो तो कौन पिता स्नेही नहीं होता!) इसलिये अपने लड़के को सब ज्यादतियां चुपचाप सह लिया करता हूं। इसके अलावा हम लोगों को नये युग की विचारधारा को भी ध्यान में रखना चाहिये। जिस युग में हम लोग पैदा हुए थे, उसके संस्कारों के मान से यदि हम आज के नवयुवकों के आदर्शों की नाप जोख करने लगें, तो यह निश्चय ही उन लोगों पर एक प्रकार से ज्यादती ही है। मैं मानता हूं कि आज के नवयुवकों में बहुत सी त्रुटियां और खामियाँ हैं। वे हम लोगों की तरह विशेष विशेष क्षणों में मुक्तभाव से प्रसन्न होना नहीं जानते, बड़े भावुक होते हैं और सब समय उनके मन में एक विचित्र रहस्यमयी उदासी छायी रहती है। जीवन के प्रकाशमय पहलू की ओर वे कभी देखना नहीं

चाहते और वर्तमान राजनीति के जटिल संघर्षमय, अत्यन्त रूखे, कठोर और और निराशामूलक तथ्यों में भयंकर रूप से दिलचस्पी लेते हैं। पर भाई, इसका कारण स्पष्ट ही यह है कि पिछली लड़ाई की प्रतिक्रिया के युग में इन बेचारों का जन्म हुआ है और वर्तमान युद्ध के कारण पैदा हुई दिल दहलानेवाली समस्याएं उनके सामने हैं। ऐसी हालत में उन लोगों के स्वभाव की असामयिक गम्भीरता, उदासी और रूखापन—ये सब बातें स्वाभाविक हैं। पर यदि हम उनके स्वभाव के दूसरे पहलू की ओर देखें, तो उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। आज के नवयुवक हमारे ज़माने के युवकों की अपेक्षा बहुत सच्चरित्र, अपनी धुन के पक्के और सिद्धान्तों के लिये मर मिटने-वाले होते हैं।

इस सिलसिले में तुम्हें मैं एक बात और बता देना चाहता हूं। नरेन्द्र की माँ से मुझे मालूम हुआ है कि वह अपनी युनिवर्सिटी की किसी एक छात्रा से प्रेम करता है और उसी से विवाह करने की इच्छा रखता है। मुझसे कभी उसने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। मैं शीघ्र ही चुपके चुपके इस बात का पता लगाने की कोशिश करूंगा कि वह लड़की कौन है। आशा है तुम सानन्द होंगे। आज कल तुम किस ग्रेड पर हो?

तुम्हारा सदैव का
कामता

❀ ❀ ❀

इलाहाबाद
३ मार्च, १९४४

प्रिय कामता,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने 'नवयुवकों की स्वतन्त्रता' का पाठ मुझे पढ़ा कर अपनी पवित्र प्रतिज्ञा को बड़ी सफ़ाई से तोड़ दिया। मुझे यह जान कर बड़ा दुःख हुआ कि तुम्हारे स्वभाव में कमज़ोरियों ने इस क़दर घर कर

लिया है। मेरी लड़की लज्जा भी शिक्षिता है। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारे लड़के से कुछ कम शिक्षा उसने नहीं पायी है! वह भी नये युग की ही लड़की है। पर तथाकथित 'स्वतन्त्रता' की भावना का लेश भी उसमें नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि मैं उस पर नियन्त्रण डाले रहता हूं। तुमने स्पष्ट ही अपने लड़के को अनियन्त्रित अवस्था में छोड़ दिया है। इसमें तुम्हारी एक चालबाज़ी भी हो सकती है। और ठीक भी है। मेरे समान एक साधारण से क्लर्क (आखिर आफ़िस का सुपरिन्टेण्डेण्ट एक क्लर्क होता है!) की लड़की से तुम अपने लड़के का विवाह करने को कैसे राज़ी हो सकते हो, जबकि तुम स्वयं सेक्रेटेरियट में सेक्रेटरी के पद को पहुँच गये हो! मैंने यह बड़ी भारी मूर्खता की कि तुम्हें उस पवित्र प्रतिज्ञा की याद दिलाई, जो तुमने जवानी के एक भाउक क्षण में की थी। अब आगे इस बिषय में कुछ लिख कर तुम्हें कष्ट नहीं दूंगा।

तुम्हारा
शिवदयाल

❀ ❀ ❀

लखनऊ
५ मार्च, १९४४

भाई शिवदयाल,

मुझे बहुत दुःख है कि तुमने मेरी सीधी और सच्ची बातों को 'चालबाज़ी' बताकर मुझ पर एक झूठा आरोप किया। क्या सचमुच तुम्हारी मनोवृत्ति इस क़दर दूषित हो गई है? मुझे आश्चर्य है कि जीवन भर के घनिष्ट परिचय के बाद आज तुम...खैर। भगवान ही इस बात का विचार करेंगे। पर केवल एक बात मैं तुम्हें फिर बता देना चाहता हूं—मैंने कभी स्वप्न में भी इस दृष्टि से नहीं सोचा कि तुम एक साधारण क्लर्क हो और मैं सेक्रेटरी हूं। यह केवल तुम्हारा 'इनफ़ीरियोरिटी काम्प्लेक्स' है।

तुम्हारा—कामता

इलाहाबाद
१० मार्च, १६४४

प्रिय कामता,

मालूम होता है, तुम्हारा अभिशाप मुझ पर फल गया। कल शाम से लज्जा का कहीं कोई पता नहीं लग रहा है। पड़ोस की एक लड़की के यहां वह रोज़ अकेली जाया करती थी। कल भी वह यही कह कर गई कि उसी लड़की के यहां जा रही है। पर बाद में मालूम हुआ कि वह वहां गई ही नहीं थी। मुझ पर अचानक ऐसा भयंकर वज्रपात होगा, इस बात की कल्पना तक मैंने नहीं की थी। मैंने घमंड किया था कि मेरी लड़की में स्वतन्त्रता की भावना का लेश भी नहीं है; उसी का यह जवाब मिला है। अभी उसका एक पत्र मिला, जिसे वह सम्भवत: जाने के पहले डाक में छोड़ गई थी। उस पत्र में उसने अपनी माँ को लिखा है—'कल पिता जी के एक मित्र का पत्र मैंने पढ़ा। उससे पता चला कि पिता जी एक ऐसे लड़के से मेरा विवाह करने के फेर में थे, जिसे मैंने जीवन में कभी देखा तक नहीं। उनके मित्र ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया है। इस प्रकार केवल पिताजी ने ही मुझपर अन्याय नहीं किया, बल्कि उनके मित्र महाशय ने भी परोक्ष रूप से मेरा अपमान किया है। इन सब बातों के विरोध में मैं घर से भाग रही हूँ।' कामता, अब तुम्हीं मुझे रास्ता सुझाओ कि इस हालत में क्या करूं।

तुम्हारा—शिवदयाल

लखनऊ
१२ मार्च, १६४४

भाई शिवदयाल,

मेरे ऊपर भी ठीक वैसा ही वज्रपात हुआ है जैसा कि तुम्हारे ऊपर। आज चार रोज़ से नरेन्द्र घर से लापता है। वह कोई पत्र भी लिख कर नहीं छोड़ गया है। पता नहीं यह किसका अभिशाप मुझे लगा है। इधर

उधर सम्भव और असम्भव स्थानों में खोज के लिए आदमी दौड़ाये गए हैं। भगवान की क्या इच्छा है कुछ समझ में नहीं आता।

कामता

❀ ❀ ❀

बड़ौदा
२४ मार्च, १९४४

भाई शिवदयाल,

मैं एक अजीब रहस्यजाल में उलझ गया हूं। पर पहले मैं तुम्हें यह सुसमाचार सुना देना चाहता हूं कि नरेन्द्र का पता लग गया है। मुझे बड़ौदा से उसने तार भेजा कि उसने बड़ौदा में आकर उस लड़की के साथ 'सिविल मैरिज' कर लिया है, जिसे वह चाहता था, और जो उसे चाहती थी। उसने तार में यह भी लिखा था कि यदि मैं उस विवाह का समर्थन करता हूं और बहू को अपने घर उसी रूप में रखने को तैयार हूँ जिस रूप में मैं अपनी ही बिरादरी में से चुनी गयी किसी लड़की को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने को तैयार होता, तो वह इस शर्त पर घर वापस आने को राज़ी है, अन्यथा नहीं। मैंने अपनी रज़ामन्दी का तार देते हुए लिखा कि मैं स्वयं बहू को लिवा लाने बड़ौदा आ रहा हूं। उसके बाद मैं यहां पहुंच गया।

मैंने बहू को देखा। बड़ी ही सुशील, शिष्ट और शान्त स्वभाव लड़की है। उसकी अवस्था प्रायः नरेन्द्र के ही बराबर (अर्थात २३—२४ वर्ष की) है। और सबसे बड़ी विचित्र बात क्या है, जानते हो? उस लड़की का नाम वही है जो तुम्हारी लड़की का है—लज्जा! उसका नाम सुनकर मेरे मन में कुछ कौतूहल जागा—हालांकि उस प्रकार की कोई सम्भावना मेरे मन में कभी पैदा नहीं हुई, पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब मेरे पूछने पर उसने अपने पिता का जो नाम बताया वह तुम्हारा ही नाम निकला। एक ही तरह के नाम संसार में कई मिल जाते हैं, यह मैं जानता था। इस-

लिये मैंने और अधिक विस्तार से उसके कुल का इतिहास और उसके पिता का हुलिया भी पूछा। आश्चर्य ! परम आश्चर्य ! सब बातें ठीक ठीक मिल गईं। बाद में मालूम हुआ कि वह अपने घर से ठीक उसी दिन भागी थी जिस दिन तुमने अपने पत्र में बताया था, और भागने का कारण भी वही बताया जो तुमने लिखा था ! यह भी मालूम हुआ कि नरेन्द्र के साथ उसकी मित्रता युनिवर्सिटी से ही थी और दोनों ने एक दूसरे के साथ विवाह करने की शपथ ले रखी थी। हर्ष की बात है कि इन दोनों की प्रतिज्ञा मेरे और तुम्हारे बीच की प्रतिज्ञा की तरह नहीं निकली। मैं तो अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ ही चुका था। इसी से मैं कहा करता हूँ कि नये युग के नवयुवक और नवयुवतियाँ हम लोगों की अपेक्षा अधिक चरित्रशील हैं। तुम्हारे और मेरे जीवन में .संयाग का जो क्रम प्रारम्भ से ही चलता रहा है उसकी चरम परिणति बहुत ही सुखद रूप में हुई है। नरेन्द्र तीन दिन पहले इलाहाबाद आ चुका था। पता नहीं, दोनों में क्या गुप्त सांठ गांठ चली कि तुम्हें कुछ पता भी न लगने पाया और दोनों चुपके से भाग निकले ! हालांकि नरेन्द्र का कहना है कि वह तुम्हारे घर गया था और तुमसे मिला भी था। तुम्हारे घर घुस कर एक चोर तुम्हारे रूबरू तुम्हारी लड़की को भगा ले गया और तुम्हें पता ही न चला ! हाः हाः !

हम लोग एक दिन बड़ौदा में और हैं। यह नया स्थान मुझे बहुत प्रिय मालूम'हो रहा है। उसके बाद मैं पुत्र और पुत्रबधू को लेकर सीधे लखनऊ चला जाऊंगा। तुम भी वहीं आकर अपनी लड़की और दामाद से मिलना।

तुम्हारा सदैव का—
कामता

सरदार

जब घुड़सवारों का वह दल जंगल के बीच में आकर ठहरा तब पूरब की ओर के बादलोंमें कुछ कुछ लाली छाने लगी थी। लड़की के साथ जो बुड्ढा घोड़े पर सवार था उसने नीचे उतरकर लड़की का हाथ पकड़ा और उसे भी धीरे से ज़मीन पर उतारा। लड़की बेंत की लता की तरह थर-थर काँप रही थी। वह लम्बे क़द की थी। रंग उसका गोरा था। उसके मुख पर किसी कठोर मानसिक पीड़ा और साथ ही शारीरिक थकान के चिन्ह स्पष्ट अंकित थे। वह एक भूरे रंग का कीमती शाल ओढ़े थी, फिर भी बाहर की ठण्ड और भीतर के भय अथवा विषाद की भावना के कारण बरबस कांप रही थी।

रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह विशाल जंगल के बीच में वह स्थान था। ऐसा जान पड़ता था कि घने वन के पेड़ों को काट कर बीच में वह स्थान तैयार किया गया है। आठ दस तंबू थोड़े थोड़े से फासले पर खड़े थे। बीच में एक तंबू ऐसा था जो अगल-बगल के सब तम्बुओं से बड़ा था। उसके बाहर एक पगड़ीधारी जवान हाथ में बन्दूक लिए खड़ा था। उस जवान से लड़की के साथवाले बुड्ढे ने प्रश्न किया—"सरदार कहाँ हैं?"

जवान ने उत्तर दिया—"भीतर बैठे हैं। चाय पी रहे हैं।"

बुड्ढा लडकी का कांपता हुआ हाथ पकड़ कर धीरेसे उस बड़े तम्बू की ओर बढ़ा। तम्बू के भीतर प्रवेश करते ही लड़की ने देखा, प्राय: ३० वर्ष का एक स्वस्थ और सुन्दर पुरुष काले रंग के रोंवेदार ऊन का ओवरकोट और उसी

चीज़ की बनी ड्रड्डे आकार की टोपी पहने एक मेज़ के पास बैठा हुआ एक हरे रंग के प्याले से चाय पी रहा है। तम्बू की सजावट बड़ी ठाटदार थी। नीचे फ़र्श पर कीमती कालीनें और बाघ, चीते, हिरन, गोश आदि की खालें बिछी हुई थीं।

कुर्सियों और सोफ़ाओं पर मखमली गद्दे बिछे हुए थे। क़नात की दीवारों पर कुछ चित्र-प्राकृतिक दृश्यों के टँगे थे। वह व्यक्ति चाय पीना छोडकर तीव्र कौतूहल भरी दृष्टि से लड़की की ओर देखता रह गया। लडकी ने आंखें नीची कर लीं और रोनी सी सूरत बनाए जूडीग्रस्त व्यक्ति की तरह बरबस कांपती रही। यदि बुड्ढे ने उसका हाथ मजबूती से न पकड़ा होता वह निश्चय ही नीचे गिर गयी होती।

बुड्ढे ने बड़े अदब से सलाम बजाते हुए काले कोट धारी व्यक्ति से कहा—"सरदार, यह वही लड़की है जिसके बारे में नियाज ने उस दिन बातें की थीं।"

सरदार की त्योरियां चढ़ गयीं। उसका सुन्दर गोरा मुख असाधारण रूप से तमतमा उठा। उसने और एक झलक लडकी की ओर देख कर अत्यन्त गुरु-गम्भीर वाणी में (जो उसकी आयु और व्यक्तित्व को देखते हुए अस्वभाविक लगती थी) बुड्ढे से कहा—"मैंने नियाज को मना कर दिया था न, कि लड़की पर हाथ न उठावे और उसे किसी तरह की हानि न पहुंचावे?"

"हां सरदार!" बुड्ढे ने सिर नीचा किए हुए कहा।

"तब?" यह कहते हुए सरदार ने फिर एक बार कनखियों से लड़की की ओर देखा।

"सरदार, नियाज़ का कसूर माफ़ कर दो। बनवारी बचपन से उसका साथी रहा है। बनवारी के साथ जसी ज्यादती की गई है, वह तुम से छिपी नहीं है। अपने साथी का बदला चुकाए बिना उससे किसी तरह रहा नहीं गया। उसका कहना है कि सरदार चाहे उसे गोली मार दे, उसे मंजूर

है, पर सरदार वह रूढ़ और गंवार है, किन्तु अपने साथी के लिए जान देने को तैयार है। लड़की के साथ कोई ज्यादती नहीं की गई है। मैंने जब देखा कि नियाज लड़की को भगाने पर ही तुला हुआ है, तो कोई चारा न देख कर लड़की की हिफाज़त का भार मैंने अपने ऊपर ले लिया।"

"तो तुम भी इस षड़यन्त्र में शामिल हो ?"

"नहीं सरदार, पर मैं तुम्हें अपनी बात कैसे समझाऊँ !"

कुछ देर तक तम्बू के भीतर एक भयावना सन्नाटा छाया रहा, उसके बाद सरदार ने अत्यन्त दृढ़ता से कहा—"नहीं तोताराम ! मैं नियाज को माफ़ नहीं कर सकता। उसे इसी दम गिरफ्तार कर लो। मैं बाद में बताऊँगा कि उसे क्या सज़ा देनी होगी।"

"जो हुक्म सरदार !" कह वृद्ध तोताराम ने फिर एक बार अदब से सलाम किया और उसके बाद लड़की का हाथ पकड़ कर उसे बगल वाले सोफा पर बिठाते हुए बोला—"बेटी तुम आराम से बैठ जाओ, घबराओ नहीं !"

तोताराम के चले जाने पर सरदार के मुख पर से क्रूर और कठोर भाव पल में विलीन हो गया और उसके स्थान पर अत्यन्त मधुर और निरतिशय कोमल छाया आश्चर्यजनक रूप से विभासित हो उठी। लड़की ने कनखियों से सरदार के मुख के उस भाव को देख लिया था और सम्भवतः मन ही मन तनिक आश्वस्त भी हो उठी।

सरदार ने कहा—"मुझे सख्त–उफ़–अत्यन्त खेद है कि मेरे आदमियों ने आपके साथ इस तरह का व्यवहार किया। आप निश्चिन्त रहें। मैं आपका बाल भी बाँका नहीं होने दूँगा। आप तनिक सुस्ता लीजिए और यदि अनुचित न समझें तो एक प्याला गरम चाय पी लीजिए। आप ठंड से ठिठुर रही हैं।"

लड़की ने इस बार संकोचलेशहीन, पूर्ण दृष्टि से सरदार की ओर देखा। उसका कौतूहल असधारण रूप से जाग उठा था। उस घोर जंगल के बीच में

डाकुओं के सरदार के मुंह से इस तरह की सुसंकृत और सभ्य भाषा में आश्वासन भरी ऐसी मधुर बाणी सुनने की आशा का स्वप्न भी वह नहीं देख सकती थी। इसके अतिरिक्त सरदार के मुख का सौंदर्य्य इस समय चौगुनी तीव्रता से लड़की की बाहरी और भीतरी आँखों के आगे चमक रहा था। अपनी उस घोर दुर्दशाग्रस्त अवस्था में भी उस असाधारण सुन्दरता के प्रदीप आकर्षण की अपेक्षा उसका मन चाहने पर भी नहीं कर पा रहा था।

पर वह बोली कुछ नहीं, और कुछ ही क्षण बाद उसने सिर नीचा कर लिया और अंचल से मुंह ढांप लिया। आधी रात में जब अचानक उसे मालूम हुआ था कि डाकुओं ने उन लोगों का मकान घेर लिया है, और कुछ समय बाद डाकू बलपूर्वक उसे पकड़ कर, उसके और उसकी माँ के रोने बिलखने की तनिक भी परवाह न कर उसे भगा ले गये थे। तब से लेकर इस समय तक एक भौतिक भय और भ्रान्ति से उसके चित्त में एक अजीब सी जड़ता छायी हुई थी। अब सरदार की बातों से पहली बार उसके भीतर भावावेग की लहरें उठने लगीं और अचानक वे लहरें पूरे वेग से उमड़ उठीं! वह फफक-फफक कर रोने लगी।

सरदार अपनी कुर्सी पर से उठ कर उसके निकट आकर खड़ा हो गया। और उसे हर तरह की दिलासा देने की चेष्टा करने लगा। पर उसकी बातों से लड़की शान्त होने के बजाय और अधिक भावाकुल हो उठती थी। अन्त में सरदार ने हार मान कर घंटी बजायी।

तत्काल बाहर से एक आदमी दौड़ा हुआ चला आया। सरदार ने कहा—"तोताराम को बुला लाओ! जल्दी!"

आदमी आदाब बजा कर चला गया। थोड़ी देर बाद तोताराम उपस्थित हुआ। सरदार ने कहा—"तोताराम, यह बहुत घबरायी हुई हैं। इन्हें तुम अपने साथ ले जाओ, और किसी तरह समझा बुझाकर चाय पीने और नाश्ता करने को राज़ी करो। दिन भर इन्हें कड़ी निगरानी में रखना एक सेकेन्ड भी

अपनी आँखों की ओट न रखना। इस मामले में मुझे तुम्हारे सिवाय और किसी दूसरे आदमी का विश्वास नहीं है। अंधेरा होते ही इन्हें कुल माल-मत्ते के साथ सुरक्षित अवस्था में इनके घर वापिस पहुँचा देना। देखना, जो कुछ मैंने कहा है उससे तनिक भी अन्तर पड़ने न पावे। जाओ इन्हें ले जाओ।"

"जो हुक्म, सरदार!" कह कर बुड्ढे ने धीरे से लड़की का हाथ पकड़ा और स्नेह भरे स्वर में बोला "चलो बेटा! दूसरे तंबू में चलो।"

लड़की ने तनिक भी प्रतिरोध नहीं किया और अंचल से आँखे पोंछती हुई उठ खड़ी हुई। अपनी भीगी पलकों के भीतर से उसने एक झलक सरदार की ओर देखा या नहीं, ठीक से कुछ कहा नहीं जा सकता। पर सरदार को ऐसा लगा जैसे उसने देखा। सरदार ने बरबस निकलती हुई आह को दबाने की चेष्टा की। लड़की ने उसी क्षण आँखें फेर लीं और बुड्ढे के साथ बाहर निकल गयी।

दिन भर लड़की ने कुछ नहीं खाया। सरदार कुछ क्षण के लिए उस तंबू के बाहर खड़ा हुआ जिसके भीतर लड़की सोफा के बाजू पर सिर रखे आँखे बंद किए बैठी थी।

एक बार सरदार ने स्वयं भीतर जाकर लड़की से उसकी तबीयत का हाल पूछने की बात सोची। पर तत्काल उसका विचार बदल गया और वह अपने तंबू को वापस लौट गया।

तोताराम के बहुत अनुरोध करने पर लड़की शाम को एक प्याला चाय पीने को राज़ी हो गई। जब अंधेरा होने लगा, तो सरदार ने एक बार फिर लड़की को उसके घर पहुंचा आने और रात ही में वापस चले आने की आज्ञा दी। तोताराम ने लड़की के बहुत छटपटाने पर भी उसकी आँखों में पट्टी बांध दी। उसके बाद उसे घोड़े पर बिठाकर स्वयं भी उस पर सवार हुआ। कुछ दूर तक धीरे-धीरे चला। उसके बाद उसने रफ्तार बढ़ा दी।

जंगल के भीतर कई उलटे-सीधे चक्करों से होता हुआ लगातार पांच घंटे

तक घोड़ा कभी चलता और कभी दौड़ता रहा। अन्त में जब गाँव निकट आया तो तोताराम ने घोड़ा रोक लिया। तोताराम ने लड़की की आंखों से पट्टी उतार दी, और उसका हाथ पकड़कर वह कुछ दूर तक गांव की ओर बढ़ा। घोड़े को उसने वहीं रहने दिया। उस चिर साथी घोड़े के सम्बन्ध में वह निश्चिन्त था कि वह न कहीं भाग सकता है, न उसके सिवा दूसरा व्यक्ति उसे पकड़ सकता है। लड़की को कुछ दूर आगे पहुँचा कर उसके हाथ में एक थैली-गहनों और रुपयों से भरी देकर वह लौट चला।

कृष्ण पक्ष की अन्धेरी रात थी। पर तोताराम ऐसे चल रहा था जैसे अभी दिन हो! घोड़े के पास पहुंच कर वह फुरती से उस पर चढ़ा और पीठ थप-थपाते ही घोड़ा हवा की रफ्तार से सरपट भागा।

❀ ❀ ❀

फू——के जमीन्दार ठा० प्रतापसिंह की लड़की अपर्णा जब डाकुओं के यहां से लौट कर आयी तो गांववालों ने उसके चरित्र पर ऐसे ऐसे व्यंगबाण कसने शुरू किए कि ठाकुर साहब को लड़की को लेकर गांव में रहना असम्भव हो गया। प्रारम्भ में ठाकुर साहब ने बड़ा कड़ा रुख अख्तियार किया। जब जिस किसी के बारे में उन्हें मालूम हुआ कि वह अपर्णा के खिलाफ आलोचना कर रहा है, तो उसे पिटवा कर उल्टे उसके सामाजिक बहिष्कार के उद्योग में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी, पर बाद में जब उन्होंने देखा कि एक दो नहीं बल्कि सभी व्यक्ति उनके और उनकी लड़की के खिलाफ खुल्लमखुल्ला आलोचनाएँ करने लगे हैं, तो उन्होंने अपने दमन-चक्र की व्यर्थता देखकर गांव छोड़कर चल देना ही उचित समझा। लड़की शहर में कॉलेज में पढ़ती थी। गरमी की छुट्टियों में हवा बदली के लिए गांव में आयी हुई थी। ठाकुर साहब ने निश्चय किया कि अगले साल से लड़की को गरमियों में भी शहर ही में रहने देंगे।

पर डाकुओं ने उनके यहां जो लूट मचाई थी उस घटना का ऐसा घातक

प्रभाव उनके अनजान में उनके भीतर ही भीतर पड़ता चला गया कि उन्हें सचेत होने का मौका ही नहीं मिला, और एक दिन हृदरोग के प्रबल आक्रमण के फलस्वरूप वह चल बसे। जीवन में जो जो दुर्द्धर्ष कर्म उन्होंने किए थे उन पर पश्चात्ताप करने का अवसर भी उन्हें प्राप्त नहीं हो सका।

उनकी मृत्यु के बाद जमींदारी में दबे हुए विद्रोह की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ऐसी अराजकता फैल गयी कि सरकार को बड़े कड़े उपाय उस बगावत को दबाने के लिए काममें लाने पड़े। जमींदारी का प्रबन्ध कोर्ट-आफ-वार्डस के अन्तर्गत आ गया और अपर्णा और उसकी मां को शहर में बैठे बैठे एक साधारण सी रकम अपने खर्च के लिए मिलने लगी। अपर्णा ने एम० ए० तक पढ़ाई जारी रखी। पर ललित कलाओं की ओर उसका झुकाव दिन पर दिन अधिक बढ़ता चला जाता था। वह चित्रकला और संगीत की शिक्षा भी साथ साथ प्राप्त करने लगी।

शहर में एक बार अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का विराट समारोह हुआ। देश के विभिन्न भागों से सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ आये हुए थे। स्थानीय संगीतज्ञों को भी अपने कला के प्रदर्शन की भी अच्छी सुविधा दी गई।

उस दिन संध्या के समय अपर्णा को भी गाना था। कार्य्यक्रम पहले ही निर्धारित हो चुका था। देश के विख्यात कलाविदों की मजलिस में जाकर ख्याति प्राप्त करने का लोभ वह न संभाल पायी थी, इसलिए उसने अपनी सहमति दे दी थी। पर ऐन मौके पर वह हौलदिल हो उठी। उसे अपने पर विश्वास न रहा। जीवन में पहली बार वह भरी सभा के बीच में गाने जा रही थी। बुड्ढे मराठे उस्ताद ने उसे ढाढ़स बँधाया। बड़ी कठिनाई से वह राज़ी हुई। उसका नाम घोषित किया गया। उस्ताद के साथ मंच पर आकर वह बैठ गई। दर्शकों की ओर उसने देखकर भी नहीं देखा उसे एक मात्र धुन थी अपने गायन की सफलता की।

अपर्णा ने अपने हाथ में सितार ले लिया और उस्ताद ने तबला बजाना शुरू किया।

आहुति

अपर्णा सितार में सुर भरने लगी। उसे भीमपलाशी गाना था। उस्ताद ने जब सम पर जमा हुआ हाथ मारा तो अपर्णा के हृदय का तबला भी जैसे ठनक उठा। अपनी लम्बी-लम्बी पतली पतली अंगुलियों से सितार में सुर भरती हुई वह गाने लगी। जब उसने पहली बार 'स्थायी' पद गाया तो उसे लगा कि वह निश्चित रूप से असफल सिद्ध होगी। पर तत्काल ही वह सम्हल गयी। 'अन्तरा' गाते ही उसने अपनी अधखुली आँखें पूरी तरह से बन्द करलीं और जनता की उपस्थिति का तनिक भी ख़याल न करके भाव-मग्न होकर गाने लगी। समस्त श्रोत-मंडली स्तब्ध भाव से तद्गत् और तन्मय होकर सुन रही थी।

काफी देर तक वह आँखें बन्द किए रही। बीच में एक बार अचानक उसकी आँखें न जाने कैसे खुल पड़ीं—क्योंकि उसने स्वयं अपनी इच्छा से आँखे खोलना नहीं चाहा था,—और आँखे खुलते ही उसकी दृष्टि न जाने किस रहस्यपूर्ण टेलिपेथिक का तांत्रिक प्रेरणा से—या इत्तफाक से केवल एक विशेष व्यक्ति पर पड़ी जो हल्के हरे रंग के कपडे की सूट पहने था और पास ही एक सोफा पर बैठा हुआ ध्यानावस्थित हो कर उसका गाना सुन रहा था। उस पर दृष्टि पड़ते ही अपर्णा उचक उठी। एक अनोखी घबराहट, एक विचित्र भौतिक आतंक उसके सिर से लेकर पाँव तक हर-हरा उठा। पर अपनी उस घबराहट का कोई कारण वह स्वयं कुछ क्षण तक नहीं जान पायी। प्रथम क्षण में अपर्णा को ऐसा लगा जैसे उसके बचपन के दुःस्वप्न लोक का कोई भूत उसके सामने आ बैठा हो।

पर बाद में जब उसने अपनी स्मृति को कुरेदा, तो उसे याद आया कि उस 'फैशनेबुल' व्यक्ति की आकृति बहुत कुछ उस व्यक्ति से मिलती जुलती सी है, जिसे प्रायः चार वर्ष पहले उसने डाकुओं के सरदार के रूप में जंगल में देखा था। उसके अन्तर्मन को स्वयं इस बात पर विश्वास नहीं होता था और उसे विश्वास करने को जी चाहता था कि उसकी आंखें धोखा खा रहीं हैं। तथापि इस बात से उसका भय तनिक भी दूर नहीं हो रहा था। वह भीत दृष्टि से

उस व्यक्ति की ओर देखती रह गयी। गाते गाते उसकी आवाज़ लड़-खड़ाने लगी। उस्ताद ने शंकित होकर तबला बजाना रोक दिया। जनता बड़े जोरों से तालियां पीटने लगी।

गायिका की भीतरी भावना और बाहरी आवाज में सहसा जो विचित्र परिवर्तन आ गया था, उससे अधिकांश श्रोतागण एकदम अपरिचित ही रहे और अपर्णा को 'मेडेल' पर 'मेडेल प्रदान किए जाने की धोषणाएँ होने लगीं। कोट-पैंटधारी सज्जन सम्भवतः अपर्णा के मन का भाव ताड़ गए थे और इसी कारण चुपचाप उठ कर बाहर चले गए। अपर्णा भी कांपते हुए पावों से किसी प्रकार उठ कर लड़खड़ाती हुई मंच से चली गई।

उस रात अपर्णा ने नींद में डाकुओं के सरदार को कई बार देखा-कभी उसे देखकर वह भयभीत हुई, कभी उसका कौतूहल जगा और कभी अत्यन्त आत्मीय रूप में वह उसके सामने आया।

तब से अपर्णा को ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे उस सरदार की छाया उसके पीछे लगी है, और वह चाहे कहीं भागे, वह छाया उसके ऊपर सर्वदा सब समय मंडराती रहेगी।

❀ ❀ ❀

उस घटना के चन्द महीनों बाद अपर्णा की माँ की मृत्यु हो गई और वह जीवन में अकेली-निपट अकेली-रह गयी।

कई वर्ष बीत गए। एकाकी जीवन के नाना उल्टे सीधे चक्करों के बाद एक दिन बम्बई की एक सिनेमा कम्पनी से कैसे उसका सम्बन्ध जुड़ गया यह उसकी अन्तरात्मा जैसे स्वयं नहीं जानती थी—या जानना नहीं चाहती थी।

पहली बार जिस फ़िल्म में उसने ़ाम किया वह किन्हीं कारणों से पूर्णतः असफल रही। कम्पनी ने केवल एक ही फ़िल्म के लिए उससे बात तय की थी। दूसरी फ़िल्म के लिए उससे आग्रह नहीं किया गया और न किसी दूसरी कम्पनी ने ही उसे बुलाया। फ़िल्म क्षेत्र में पहली ही बार में अपनी सफ-

लता को वह अपने जीवन की असफलता समझ रही थी और जीवन के प्रति-विराग की चरमसीमा पर पहुंचने ही जा रही थी कि एक दूसरी कम्पनी ने, जो अभी नयी ही खुली थी, उसे बड़े आग्रह और सम्मान के साथ बुला लिया।

मेनेजर ने उसे फिल्म के सिनेरियों तथा डायलाग की एक कापी दी। ताकि वह अपना पार्ट समझ ले औ रयाद करले। जिस दिन पहली बार रिहर्सल होने वाला था उस दिन अपर्णा पूरी तैयारी करके गयी थी। पिछले फिल्म की असफलता से सचेत होकर वह इस नये फिल्म में अपने अभिनय में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देना चाहती थी। वह अभिनय की तैयारी में इस क़दर व्यस्त रही थी कि नायक का पार्ट खेलनेवाला ऐक्टर कौन है, यह जानने की उत्सुकता ही उसे नहीं हुई थी। उसने केवल इतना ही सुना था कि एक नया आदमी नायक का अभिनय करेगा।

जब नायक से उसका परिचय कराया गया तो उसे देख कर वह बहुत प्रसन्न हुई—वह एक बहुत ही सुन्दर हंसमुख, शांत स्वभाव और फैशनेबुल भद्र पुरुष था। उसकी उम्र प्राय: ३०—३५ वर्ष की लगती थी। अपर्णा को उसे देख कर प्रसन्नता तो बहुत हुई, पर न जाने क्यों, उस व्यक्ति की मीठी मुस्कान एक अजीब सी चुभन उसके मन के भीतर पैदा कर रही थी।

रिहर्सल शुरू हुआ। प्रारम्भिक सीन में यह दिखाया गया था कि नायिका रात में अपने कमरे में आराम की नींद सोयी रहती है और दूसरे दिन सुबह जब उसकी आंखें खुलती हैं तो वह अपने को एक सुन्दर, सुसज्जित किन्तु अपरिचित मकान के कमरे में सोई हुई पाती हैं। वह लेटे ही एक बार आंखें मल कर कमरे के चारों ओर बड़े गौर से देखती है, और फिर हड़बड़ा कर उठ बैठती है। वह उस सूने कमरे में चीख मार कर कहती है कि—"मैं कहां हूं ?" इतने में भीतर नायक प्रवेश करता है और कहता है—"तुम हूरों और परियों की दुनियां में आई हो, जहां जीवन चिर रागरंगमय है। यहां बीती हुई बात के लिए चिन्ता या पश्चात्ताप का कोई अस्तित्व नहीं है, न

आनेवाली बात की झूठी रंगीन आशा का। यहां प्रतिपल वर्तमान के ही विशुद्ध आनन्दमय रंग का समा बंधा रहता है।" अपर्णा को यह सब याद था।

पर उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब रिहर्सल में नायक का पार्ट खेलने वाले अभिनेता ने उसके प्रश्न के उत्तर में कुछ दूसरी ही बात कहनी शुरू की। अपर्णा ने जब अभिनय में चीख मारकर कहा—"मैं कहां हूं ?" तब नायक अत्यन्त गम्भीर मुद्रा बना कर गम्भीर ही वाणी में बोला—"तुम डाकुओं के बीच में आयी हो! तुम्हारे पिता ने जिन ग़रीब किसानों के साथ अमानुषिक अत्याचार किये थे, जिनकी बहू बेटियों की इज्ज़त-आबरू मिट्टी में मिलाकर उनका सब कुछ लूटकर उन्हें गांवसे निकल जाने को बाध्य किया था—वे जीवन निर्वाह का दूसरा कोई उपाय न देखकर डाकू बनने को विवश हुए हैं। वे ही जमीन्दार से बदला चुकाने के लिए तुम्हें भगा लाए थे। आज भी वे ही तुम्हें यहां लाए हैं। उनके चंगुल से तुम छूट नहीं सकतीं। यदि तुम अपने पापी पिता के अत्याचारों का प्रायश्चित करना चाहती हो तो इसी डाकुओं के दलमें मिल जाओ। यह ग़रीबों को लूटनेवाला, निस्सहायों का खून चूसनेवाला दल नहीं है, बल्कि ग़रीबों की सेवा ही इसका एक मात्र ध्येय है। यह दल तुम्हारे साथ किसी प्रकार की ज्यादती नहीं करना चाहता, बल्कि तुम्हें अपने बीचमें अत्यन्त गौरव का स्थान देना चाहता है—बशर्ते कि तुम उनके साथ सहयोग देने को राज़ी हो जाओ।"

अपर्णा विभ्रान्त दृष्टि से नायक की ओर देखती रह गयी। नायक ने जब अपना कथन समाप्त किया तो वह स्टूडियो के चारों ओर अत्यन्त भीत और चकित भावसे देखने लगी-जैसे किसी घोर संकट के बीचमें किसी सुरक्षित स्थानमें आश्रय खोजने की चिन्ता में हो। सहसा उसकी दृष्टि पूर्व की ओर के एक कोने पर खड़े एक व्यक्ति पर पड़ी जो काले रंग की शेरवानी और सफ़ेद रंग का चूड़ीदार पाजामा पहने था। उसकी ओर देखते ही उसकी आंखें चुम्बकाकर्षक की तरह स्तब्ध रह गयीं। उसके बाद वह चक्कर खाकर नीचे गिर पड़ी।

जब मुर्छा भंग हुई तो अपर्णा ने वास्तव में अपने को एक नये स्थान में पाया। स्पष्ट ही वह स्थान बम्बई शहर के बाहर था। एक नौकर ने आकर शीशे के एक गिलास में गरमागरम दूध उसके पलंग के पासवाली एक छोटी सी मेज़ पर रख दिया। पर अपर्णा ने उसे छुआ तक नहीं और केवल प्रश्न किया "मैं कहां हूं ?" प्रश्न करते ही तत्काल उसे याद आया कि यही प्रश्न उसने स्टूडियो के रिहर्सल में भी किया था, जिसका उसे आतंकजनक उत्तर सुनने को मिला था। याद आते ही वह सम्भल कर बैठ गई, जैसे किसी आसन्न खतरे से अपने को बचाना चाहती हो। कुछ देर बाद काले रंग की शेरवानी और सफ़ेद रंग का चुड़ीदार पाजामा पहने वही व्यक्ति धीरे से उसके सामने आकर खड़ा हो गया जिसे स्टूडियो में देखकर वह मुर्च्छित होकर गिर पड़ी थी।

अपर्णा ने भयभीत होकर प्रायः फुसफुसाते हुए कहा "तुम ? तुम यहां कहां ? तुम क्या वही—वही—'सरदार' हो ?"

"हां, अपर्णा, मैं वही सरदार हूं" उस व्यक्ति ने धीरे से, अत्यन्त शान्त भाव से कहा।

उसके मुंह से अपना नाम सुनकर अपर्णा के शरीर में घृणा के कांटे खड़े हो गए। उसने कहा—"तुम डाकुओं के सरदार ? तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ?"

"मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट करने के इरादे से तुम्हारे पीछे नहीं, पड़ा हूं अपर्णा ! मेरी इस बात पर तुम विश्वास कर लो। बल्कि मेरे ही कारण तुम बहुत से अनिष्टों से बची हुई हो, नहीं तो आज तक तुम्हारी जो दुर्गति हो गई होती, उसकी कल्पना भी तुम नहीं कर सकती हो। मेरी बात तुम धैर्य से सुनती जाओ, उसके बाद तुम जैसा चाहोगी वैसा ही किया जायगा। मैं डाकुओं का सरदार जरूर रहा हूं, पर मेरे दल ने कभी गरीब और असहायों पर कोई अत्याचार नहीं किया है, जैसा कि तुमने स्टूडियो में सुना है। बल्कि मेरे दल ने बराबर नाना रूपों से अत्याचार-पीड़ितों की सहायता की है—

कभी व्यक्तिगत और कभी सामाजिक तौर पर। मैं यह मानता हूं कि मैं डाकू रहा हूं, यह कलंक समाज की किसी भी सेवा से धुल नहीं सकता। समाज अब मुझे खुल्लमखुल्ला अपने भीतर स्वीकार नहीं करेगी। मैं जिस किसी भी क्षण अपने को प्रकट कर दूं उसी क्षण समाज मुझे पुलिस के हवाले करने में सहायक सिद्ध होगा।

इतने वर्षों तक मैं नाना वेषों में नाना प्रकार के पेशों से अपने पिछले व्यक्तित्व को छिपाता फिरता रहा हूं, 'पर अब मुझे इस प्रकार की आंख मिचौनी से घृणा हो गई है, विशेषकर तब जब मैं देखता हूं कि तुम्हारे साथ अपकार के बदले उपकार करने पर भी मैं तुम्हारी नज़रों में इतना नीचा गिरा हुआ हूं। तुम्हारी घृणा के बाद अब मेरे लिए किसी बातकी कोई सार्थकता नहीं रह गई है, क्योंकि...पर यह बात जाने दो। किन्तु अपना अस्तित्व मिटाने से पहले मैं तुम पर इस बात के लिए ज़ोर डालना अपना अन्तिम, अपने जीवन का सब से बड़ा कर्त्तव्य समझता हूं कि तुम्हें अपने पिता के पापों का प्रायश्चित्त अवश्य करना होगा। तुमसे इतनी बात करने के उद्देश्य से ही मैंने फिल्म का सारा जाल रचा था। तुम्हें शायद इस बात का पूरा पूरा पता न होगा कि तुम्हारे पिता ने अपने जीवन में क्या क्या घोर दुष्कर्म किये...," यहां पर सरदार ने दो बार चुटकी बजाई, और एक नवजवान लड़की ने; जो शिक्षिता लगती थी, भीतर प्रवेश किया। सरदार अपर्णा की ओर देखकर बोला—"उसे देख रही हो? उसकी मां का सर्वस्व छीन कर तुम्हारे पिता ने दोनों मां-बेटियों को दर-दर भीख माँगने के लिए छोड़ दिया था। मां मर गई है, और इस लड़की की रक्षा पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध मेरे ही दल ने किया है। ऐसे बीसियों उदाहरणों में से यह केवल दो हैं। इसलिए कहता हूं कि तुम्हें अपने पिताके पापों का प्रायश्चित्त करना होगा—उस पिता के पापों का जो डाकुओं के सरदार का भी सरदार था! संगीत सम्मेलन में और फिल्म कंपनियों में जीवन बरबाद करते हुए तुम्हें शर्म आनी चाहिए,

जब कि तुम्हारे पिता द्वारा अनाथ किए गए व्यक्ति की तरह हज़ारों-लाखों अनाथ देशके कोने कोने में दम तोड़ रहे हैं और सहस्रों प्रकार के अन्यायों और अत्याचारों से दबे पड़े हैं। मेरी कड़क बातों के लिए मुझे क्षमा करना। मैं जाता हूं। सदा के लिए। आज से कभी तुम मेरी छाया को अपने पीछे नहीं पाओगी। पर जाने के पहले इन दो व्यक्तियों को तुम्हारे साथ छोड़े जाता हूं। इन दोनों ने मेरे डाकुओं के दल की कार्रवाइयों में भाग नहीं लिया है। इनका क्षेत्र दूसरा ही रहा है—खुले आम सामाजिक सेवा करना ही इनके जीवन का ध्येय रहा है। ये दोनों विशुद्ध चरित्र और आत्म त्यागी हैं। इनके पथ का अनुसरण करना ही तुम्हारे लिए कल्याणकर होगा। और यदि फ़िल्म के जीवन से ही तुम्हें प्रेम हो तो मैं एक फ़िल्म कम्पनी छोड़े जा रहा हूं उसमें तुम काम करो और केवल ऐसे फ़िल्म का प्रदर्शन करो जिसका एकमात्र लक्ष्य दलितों को सतानेवालों का भण्डाफोड़ करने और क्षीण प्राणों में नया जोश भरने का हो। मैं आशा करता हूं कि तुम मेरा यह अन्तिम अनुरोध नहीं टालोगी। अच्छा, नमस्कार!"......यह कहते ही सरदार जादू के मन्त्र की तरह पल में न' जाने कहां गायब हो गया। 'एक्टर' क्षणिक भ्रान्ति के बाद वायुवेग से दरवाज़े की ओर दौड़ा—सम्भवतः सरदार को रोकने के लिए, पर सरदार वहां कहां!

अपर्णा के कानों के दोनों ओर किसी की मर्मभेदी वाणी निरन्तर बड़ी तीव्रता से गूंज रही थी। नौजवान लड़की ने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वर में उससे कहा—"बहन, दूध पी लो, तुम थकी हुई हो।"

पर अपर्णा के कानों तक उसकी बात पहुंच नहीं पायी। "तुम्हें अपने बाप के पापों का प्रायश्चित्त करना होगा।" निरन्तर यही एक आवाज़ उसे सुनाई दे रही थी। वह मन ही मन में कह रही थी—"ठीक है, मैं प्रायश्चित्त

करूंगी, अवश्य करूंगी ! मैंने अपने चरम उपकारी को परम अपकारी माना है।"

× × ×

दूसरे दिन संवाद पत्रों में यह ख़बर छपी कि अपर्णा नामकी एक अभिनेत्री ने गले में फांसी लगाकर आत्म हत्या कर ली है।

चौथे विवाह की पत्नी

प्यारी भामा,

तुम्हारे दोनों पत्र मुझे यथा समय मिल गये थे। इतने दिनों तक उत्तर न भेज सकी, इसके लिये मुझे क्षमा करना। तुमने इस बात की शिकायत की है कि मैं अपनी सहेलियों को पत्र लिखने में सदा आना-कानी करती हूं। इस आना-कानी का कारण तुमने अपने अनुमान से यह समझा है कि चूँकि मैं एक धनी घर में व्याही गई हूँ, इसलिए अपने बाल्यकाल की उन सखियों को भूल गई हूँ, जिनका विवाह के बाद भी निर्धनता से सम्बन्ध नहीं छूटा है। बहन, तुमने बहुत छुटपन से मेरी प्रकृति से परिचित होने पर भी ऐसी बात लिखी है, जिससे मुझे बड़ी गहरी चोट पहुँची है। पत्र कम लिखने की जिस बुरी आदत से मैं लाचार-सी हो गई हूं, उसके कारण बहुत से हैं, पर यह कदापि नहीं हो सकता, जिसका उल्लेख तुमने किया है। मैं गिरस्ती के जंजालों में ऐसी जकड़ी हुई हूं कि प्रथम तो मुझे अवकाश ही नहीं मिलता और मिलता भी है तो मन में एक ऐसी जड़ता छाई रहती है कि इच्छा प्रबल होने पर भी किसी को कुछ लिख नहीं पाती। मुझे स्वयं इस बात पर बड़ा आश्चर्य होता है गृहस्थ जीवन का सब सुख प्राप्त होने पर भी मैं अवकाश के समय अपने जीवन में क्यों एक विकराल शून्यता का अनुभव करती हूं। धनी परिवार, गुणवान पति हंसते खेलते हुये बाल-बच्चे, सहृदय सास-ससुर सभी मुझे सहज-सुलभ हैं, तिस पर भी न जाने क्यों समय-समय पर असन्तोष का दीर्घ निःश्वास बरबस मेरी

आत्मा से निकल पड़ता है। कभी—कभी मुझे सन्देह होने लगता है कि मैं कहीं सचमुच पागल न हो जाऊं। किसी भी काम में मैं कितनी ही व्यस्त होऊं, फिर भी अन्यमनस्क—सी रहती हूं, और जब इस अन्यमनस्कता का कारण खोजने लगती हूं, तो कुछ भी नहीं समझ पाती और सारे मस्तिष्क में घोर भ्रान्ति छा जाती है और सिर चक्कर खाने लगता है।

असल बात मुझे यह मालूम होती है कि जिस युग में हम लोगों ने जन्म लिया है, असन्तोष की बीमारी उसका प्रधान लक्षण है। क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बच्चे, क्या बूढ़े, सभी को इस रोगने ज्ञात या अज्ञात रूप से धर दबाया है। उच्चतम शिक्षा-प्राप्त धनी व्यक्तियों से लेकर अशिक्षिततम निर्धन व्यक्तियों तक सभी इस रोग से पीड़ित हैं। मुझे न मालूम क्यों इस बात पर विश्वास होने लगता है कि इस युग की हवा में ही कोई एक ऐसी रहस्यपूर्ण इन्द्रजाली माया छिपी हुई है, जो वास्तविक जीवन के प्रांगण में प्रवेश करने के पहले कुमार-कुमारियों की मानसिक आंखों के आगे भविष्य का एक ऐसा मनोमोहक झिलमिला रूप खड़ा कर देती है कि निकट पहुंचने पर वह मृगतष्णा से भी अधिक धोखा देती है।

आश्चर्य तो इस बात पर अधिक होता है कि सुख का जो साधारण आदर्श तुम्हारी और मेरी जैसी लड़कियों के मन में विवाह के पहले होना चाहिए, वह जब चरितार्थ हो जाता है, तो भी हम लोगों का असन्तोष ज्यों का-त्यों बना रहता है। तुम भी अपने मन में अपने विवाहित जीवन के प्रति असन्तोष का भाव छिपा नहीं सकी हो। इससे यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि हम लोग सुख की चरितार्थता के लिये संसार से एक ऐसी अज्ञात और अवर्णनीय वस्तु चाहते हैं जो इसके पास नहीं है।

तुम्हारा हमारा जब यह हाल है, तो जिन्हें भाग्य ने वास्तवमें असन्तोष का कारण दिया है, उनके सम्बन्ध में कहना ही क्या है। मैं रामेश्वरी की बात सोच रही हूं। मैं जानती हूं कि उसे उसके अनुरूप पति प्राप्त नहीं हुआ।

पर मैं पिछले युग की ऐसी स्त्रियों को भी जानती हूं, जो उससे भी निकृष्ट पति प्राप्त होने पर भी जीवन को जीवन की तरह बिता गई हैं। रामेश्वरी को तो फिर भी धनी पति प्राप्त हुआ था; पर वे स्त्रियां कुरूप, गुणहीन और साथ ही निर्धन पतियों के साथ जीवन यात्रा करने को बाध्य होने पर भी कभी नहीं उकताई हैं। उनका उत्साह कभी पल भर के लिए भी ठंडा नहीं पड़ा है। मैं जानती हूं कि तुम ऐसी स्त्रियों की दास-मनोवृत्ति का उल्लेख करोगी, क्योंकि तुम मेरी ही तरह बीसवीं शताब्दी में पैदा हुई हो और अधिक नहीं तो मिडिल तक शिक्षा पा चुकी हो। मैं तुम्हारी इस सम्मति की यथार्थता भी स्वीकार कर लेती हूं। पर साथ ही मैं तुम्हारे सामने वही समस्या रखूंगी, जिसका उल्लेख पहले कर चुकी हूं। इस दास–मनोवृत्ति रहित युग में ऐसी स्त्रियों की संख्या अधिक क्यों है? जिन्हें अपने अनुरूप रूप, गुण, शील और धनी पति प्राप्त होने पर भी असन्तोष का रोग जकड़े रहता है? मुझे पूरा विश्वास है कि रामेश्वरी को यदि उससे भी अधिक रूप गुण सम्पन्न पति मिलता तो भी वह कदापि सन्तुष्ट न होती। कारण मैं यही समझती हूं कि जिस असम्भव और अज्ञात छायात्मक वस्तु की प्राप्ति की अस्पष्ट आकांक्षा से इस युग की सभी लड़कियां पीड़ित रहती हैं उससे वह भी बची नहीं थी। पर रामेश्वरी की यह छायामयी आकांक्षा परिस्थितियों के फेर से विकृत होकर किस घोर पार्थिव माया में परिणत हो गई थी, उसका इतिहास कुछ विचित्र-सा है। इधर कुछ दिनों से मेरे मस्तिष्क में उसी की मूर्ति नाच रही है। इसलिए आज मौका पाकर इस पत्र में उसके विषय में कुछ बातें कहकर मैं तुम्हारे आगे अपना जी हल्का करना चाहती हूं। आशा है, तुम उकताओगी नहीं।

रामेश्वरी के बारे में तुम भी बहुत कुछ जानती हो—यद्यपि उतना नहीं, जितना कि मैं। तुम्हें मालूम है कि वह दल की लड़कियों की नेत्री थी। गरीब घर में पैदा होने पर भी उसके स्वभाव में एक ऐसी तीव्रता थी कि सब लड़कियाँ उसके संकेत पर चलती थीं। तुम्हें वह दिन याद है, जब तुमने किसी

कारण से उसके किसी आदेश का पालन करने से इन्कार किया था और हम सब लड़कियों ने उसके कहने पर तुम्हारा बहिष्कार कर दिया था! अन्त में उसके पैरों पर गिड़गिड़ाकर तुम्हें क्षमा मांगनी पड़ी थी।

रामेश्वरी उम्र में हममें बहुतों से बड़ी थी। सबका विवाह एक एक करके होता जाता था: पर रामेश्वरी का विवाह उसके घरवालों की निर्धनता तथा अन्यान्य कारणों से नहीं हो पाता था, यह बात तुम्हें मालूम है। अन्त में हमारी सहेलियों में रामेश्वरी और मैं केवल दो जनी अविवाहित रह गईं। जब मेरे भी विवाह की बात पक्की हो गई, तो वह बहुत घबराई। विवाह होने पर उसने मेरे पतिदेव को देखा। जिस- जिसने उन्हें देखा था; उसी ने उनके रूप की प्रशंसा की थी। पर रामेश्वरी ने उन्हे देखकर ऐसी उत्कट घृणा का भाव प्रकट किया कि मैं आतंकित हो उठी। नाक- भौं सिकोड़ कर वह बोली—"ऐसा बदसूरत आदमी मैंने अपनी जिन्दगी में कभी नहीं देखा। लोग क्या समझकर तारीफ़ कर रहे हैं, मैं समझी नहीं। बिमला, मुझे तुम्हारे लिए बड़ा दुख है।" मैं मन ही मन उसकी मनोवृत्ति देखकर जल उठी थी, पर ऊपर से शान्त भाव दिखाती हुई बोली—"बहन, दुख बिल्कुल न होने दो। मेरा सुहाग बना रहे, इतना ही काफ़ी है। पतिके रूप गुण से मुझे क्या करना है।"

उसने कहा—"तुम मूर्ख हो, इसलिए रूप– गुण का महत्व नहीं समझतीं।"

मैं चुप हो रही। मेरी हमजोली की इतनी लड़कियों की शादी हो चुकी थी; पर मैंने कभी किसी के पति के सम्बन्धमें उसकी रुचि को सन्तुष्ट होते नहीं देखा। पता नहीं पतिके रूपके सम्बन्ध में उसका कौन-सा निराला आदर्श था। मुझे तो यह सन्देह होता है कि यदि स्वयं कुमार कार्तिकेय भी मनुष्य के रूप में आकर वरण करते, तो वह उनके रूपमें भी कोई न कोई दोष अवश्य निकालती। तुम्हारे पति के सम्बन्ध में उसने अपना मन्तव्य प्रकट किया था, वह तो तुम्हें मालूम ही है।

अन्त में उसके चाचा ने बड़ी दौड़ धूप करने के बाद उसके लिये एक वर

खोज निकाला। सुना गया कि उसके भावी पति महाशय तीन तीन पत्नियों को जीवनके उस पार पहुँचा चुके हैं; पर अभी तक बड़े 'जवान' और साथ ही हैं धनी भी। तुम तब ससुराल थीं, और तबसे तुम्हें रामेश्वरी को देखने का मौका कभी नहीं मिला है। पर मैं उन दिनों मायका ही थी और उसके बाद भी कई बार उससे मिली हूँ। खैर, रामेश्वरी ने जब सुना कि उसके विवाह की बात पक्की होगई है, तो (मेरा अनुमान है) इस बातसे उसकी उत्सुकता और उत्साह में तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा कि वह ऐसे पति के साथ व्याही जा रही है, जिसकी तीन पत्नियां मर चुकी हैं। वह इतनी मूर्ख न थी कि चौथे विवाहवाले व्यक्ति को एकदम जवान मान लेती। फिर भी उसकी सी रुचिवाली लड़की इस बात से तनिक भी विचलित नहीं हुई। इस बातसे मुझे कम आश्चर्य नहीं हुआ।

निश्चित दिन को संध्या के समय बरात बड़ी धूम धाम से आई। मुकुटधारी वर का मुँह झालर से ढका हुआ था, और एक रेशमी रूमाल से उसने अपने होठों को ढक रखा था। बड़ी सभ्यता और शालीनता से वह अपने सिर को नीचे की ओर किये हुये था, जैसा कि ऐसे अवसरों पर करने का रिवाज सा है। रामेश्वरी मेरे साथ खड़ी थी और अन्यान्य स्त्रियों के साथ कोठे परसे बारात का दृश्य देख रही थी। वर महाशय का चेहरा यद्यपि नहीं दिखाई देता था, तथापि विवाह की पोशाक में सचमुच जवान मालूम पड़ते थे। रामेश्वरी के मुख में उल्लास की दीप्ति चमक रही थी।

पर विवाह मंडप में जब उसने प्रथम बार अपने पति के दर्शन स्पष्ट-रूप से किये, तो उसकी सारी आत्मा आतंकित हो उठी। हम लोगों ने भी उसी समय उसके पति को देखा था। वास्तव में ऐसा विकृत-रूप-पुरुष मैंने अपने जीवन में न पहले कभी देखा था न उसके बाद कभी देखा है। कोयले की तरह काला रंग, प्रेतात्मा की तरह शीर्ण मुख, गालों की हड्डियां बाहर को निकली हुईं, आंखें एकदम भीतर को धंसी हुईं, भौहों में बाल नहीं, सिर के आधे भाग में बाल सफ़ाचट और आधे भाग के आधे बाल पके हुये, पर सबसे अधिक

भयावने थे मुंह के बाहर सुअर की तरह निकले हुये दो बड़े बड़े दाँत। रामेश्वरी को वह साक्षात यमराज के दूत की तरह मालूम हुआ। वह मूर्छित होकर मंडप ही में गिर पड़ी। बहुत देर तक सिर में पानी छप-छपाने और पंखा करते रहने के बाद वह होश में आई। किसी तरह उसका हाथ पकड़ कर विवाह-कार्य सम्पादन किया गया।

दूसरे दिन विदाई के पहिले जब मैं उससे मिली, तो वह नादान बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगी और कहने लगी—"बहन, मैंने तुम्हारे पति को कुरूप बताया था, भगवान ने मुझे उसी का दण्ड दिया है। मुझे क्षमा करना।" कहकर वह मेरे गले से लिपट गई और व्याकुल होकर और अधिक-वेग से रोने लगी। मैंने जीवन में प्रथम बार उसे उतना कातर देखा था। मेरी आंखों से भी आंसू उमड़ चले थे। मैंने दिलासा देते हुये कहा—"घबराओ मत, बहन! भगवान ने चाहा तो यह विवाह तुम्हारे लिए सब तरह से शुभकारी होगा।"

उसके पति का नाम ज्वाला प्रसाद दीक्षित था, वह विजनौर कन्ट्रेक्टर थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। पहले विवाह से एक लड़की हुई। आठ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई थी। दूसरे विवाह से एक लड़का हुआ था, जो तीन वर्ष की अवस्था में इस लोक से चल बसा था। तीसरे विवाह से कोई सन्तान नहीं हुई थी। उनके एक सौतेले भाई थे। पैतृक सम्पत्ति का बंटवारा हो गया था और दोनों भाई अलग-अलग रहते थे। इसलिये जब रामेश्वरी अपने पति के साथ ससुराल आई, तो सारे घर की एकेश्वरी रानी-सी बन कर आई। पर सारा घर उसे भौतिक साम्राज्य की तरह सूना लगता था।

दीक्षितजी ने प्रथम दिन से ही रामेश्वरी के साथ रंग-रस की बातें करनी शुरू कर दी। वह देखने में जैसे कुरूप और कदाकार थे, बातें करने में वैसे ही कुशल और प्रवीण थे। पहले तो रामेश्वरी का सारा शरीर उनकी रसिकता की बातें सुनकर घृणा से जर्जरित हो उठता था, पर पीछे धीरे-धीरे उसे आदत पड़

गई और बहुत-कुछ सहन करने लगी। पर उसने अपने पति का दूसरा रूप अभी नहीं देखा था, जो पीछे प्रकट होने लगा। प्रारंभ में कुछ दिनों तक उसे उसके पति ने सब बातों की पूरी स्वतन्त्रता दी। उसे परोक्ष रूप से यह आभास दिया कि वह मन के अनुरूप खावे-पीवे, पहने, खर्च करे, उसे रोकनेवाला कोई नहीं है। फल यह हुआ कि उसने इच्छानुरूप बढ़िया बढ़िया पकवान तयार करके खूब खाया। दूसरों को खिलाया और पड़ोस में बांटा। अच्छे अच्छे कपड़े स्वयं पहने और मुहल्ले की गरीब स्त्रियों को पहिनने के लिए दिये। इससे यह न समझना चाहिए कि उसमें स्त्री जाति की स्वाभाविक कृपणता वर्तमान नहीं थी। पर उस समय उसके मन की स्थिति ही कुछ विचित्र थी। उसकी अदम्य प्रणयाकांक्षा को जब खूंसट पति के फूहड़ व्यक्तित्व ने प्रबल वेगसे धक्का दिया, तो उसके भीतर निहित आत्म-रक्षा के संस्कार ने पति की धनाढ्यता के प्रति अपनी आसक्ति जोड़ने के लिए उसे प्रेरित किया और कुछ दिनों तक मुक्त-हस्त होकर स्वयं रुपया खर्च करने तथा वितरण करने से उसकी आहत आत्मा को किसी हद तक सन्तोष प्राप्त हुआ। पर दीक्षित जी ने जब देखा कि ज्यादती होने लगी है, तो उन्होंने अपना असली रूप धारण किया। पहले उन्होंने उसे सावधान किया, पर जब वह न मानी, तो क्रुद्ध होकर उसे डांटना शुरू किया। जब इससे भी कोई फल न निकला, तो उन्होंने उसे पीटना शुरू कर दिया। आधे-आधे अंगुल लम्बे अपने दो टेढ़े और पीले दांतों को बाहर निकाल कर जब वह असह्य आक्रोश से गर्जन करते हुये रामेश्वरी को पीटने लगते तो रामेश्वरी को न जाने क्यों तस्वीर में देखी हुई नृसिंह बाराह और कल्कि अवतार की मूर्तियों की याद आ जाती थी। वह अत्यन्त भयभीत हो उठी। रात को कभी वह स्वप्न देखती कि बाराह अवतार उसके पति का रूप धारण कर अपने दो-दो लम्बे दांतों से उसे पकड़ कर किसी अंधेरी गुफा की ओर जा रहा है। कभी देखती कि उसका विवाह होने पर उसके पति विकट रूप धारण करके लाल वस्त्र पहन कर एक भैंसे पर सवार होकर चले जा रहे हैं और वह स्वयं एक

दूसरे भैंसे पर चढ़ कर उनके साथ-साथ अन्यमनस्क-सी होकर चली जा रही है। वह सब बाराती भूत-प्रेतों की तरह विकृत रूप धारी हैं। बारात श्मशान मार्ग से होकर श्मशान के चांडालों की बस्ती में पहुंची है। सब लोग एक भौतिक-नृत्य से 'हाः हाः होः होः' का रव कर रहे हैं।

दीक्षित जी अपनी कंजूसी के लिए मुहल्ले में विख्यात थे। उनके सम्बन्ध में यह किम्बदन्ती सुनी जाती थी कि एक बार उनके एक सनकी मित्रने इस शर्त्त पर उन्हें एक रुपया देना स्वीकार किया कि वह उनका जूता उठाकर ५ मिनट तक अपने सिर पर रखे रहें। उन्होंने शौक से ऐसा किया और सिर में लगी हुई गर्द झाड़कर रुपया बजा कर जेब में रख लिया। वह कभी जलपान नहीं करते थे और सस्ता से सस्ता चावल खरीदते थे और सस्ता से सस्ता आटा। यदि दाल बनती तो तरकारी उनके यहां नहीं बनती थी, और यदि तरकारी बनती तो दाल न बनती। यदि भोजनोपरान्त रसोई में रोटी का टुकड़ा भी ज्यादा बच जाता, तो उनकी भूतपूर्व पत्नियों पर बड़ी जबरदस्त डांट पड़ती। इसके प्रायश्चित्तस्वरूप वह दूसरे दिन अपने नियमित अहार से एक रोटी कम खाते थे। चूंकि रामेश्वरी 'वृद्धस्य तरुणी भार्या' थी, इसलिए वह कुछ दिनों तक मन मार कर जी कड़ा करके उसकी ज्यादतियों को सहते गये थे। पर अधिक न सह सके और नोन तेल लकड़ी का सारा प्रबन्ध उन्होंने अपने हाथ में ले लिया।

धीरे धीरे रामेश्वरी की भी वही दशा होने लगी, जो उसकी स्वर्गीया सौतों की रही होगी। दीक्षित जी उसकी रोटियों तक को गिनने लगे और यह उपदेश देने लगे कि अधिक खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। दृष्टांत स्वरूप उन्होंने अपनी पूर्व पत्नियों का उल्लेख करते हुये कहा कि वे उनके पीछे चोरी-छिपे आवश्यकता से अधिक खा लिया करती थीं, इसलिये उन्हें नाना रोगों ने आ घेरा और एक एक करके तीनों चल बसीं।

रामेश्वरी को समझने में देर न लगी कि उसकी सौतों की मृत्यु का वास्तविक कारण क्या रहा होगा, क्योंकि वह स्वयं अपने शरीर में रोग के

संचार का अनुभव करने लगी थी। पड़ोस की स्त्रियों से भी उसने सुना कि दीक्षितजी की तीनों पूर्व पत्नियों को मरते दम तक किस तरह भर पेट भोजन के लिए तरस तरस कर रह जाना पड़ा था और किस प्रकार वे पड़ोसियों के यहाँ जाकर मांग-मांग कर लुक-छिप कर खाया करती थीं। उसे अपने शून्य घर में दिन-दहाड़े ऐसा मालूम होने लगा, जैसे उसकी तीन मृत सौतों की आत्माएं अपनी हाय भरी आहों से सारे वातावरण को भाराक्रान्त कर रही हैं। सोचते सोचते वह थर थर कांपने लगती। कभी कभी उसके मन में यह सन्देह होने लगता कि सचमुच उसका पति कोई मनुष्य-रूपधारी प्रेतात्मा तो नहीं है? उसने कुछ कहानियों में सुन रखा था कि मृतात्माएं अपने पूर्व जन्म का बदला चुकाने के लिए पति-पत्नी अथवा पुत्र-मित्र के रूप में आकर प्रकट होते हैं और घनिष्ठता जोड़ते हैं और जीवित प्राणी को अत्यन्त कष्ट देकर उसकी आत्मा का, सारा सत्व धीरे-धीरे चाटकर अन्त में अकाल में ही उसे यम के द्वार पर पहुँचा देते हैं। जब इस अद्भुत और भयावह भावना ने उसके मस्तिष्क को जकड़ लिया, तो वह उससे मुक्ति पाने के लिये छटपटाने लगी। एक बार उसके मनमें यह बात समाई कि किसी से कुछ न कह कर चुप-चाप भाग कर अपने मायके चली जाय। फिर उसने सोचा कि यह मूर्खता है और इससे लोगों में अपनी तथा अपने मायकेवालों की हंसी कराने के सिवा और कोई लाभ न होगा।

धीरे-धीरे उसने अपने मन को स्थिर किया। उसके मन में आत्म-रक्षा की प्रवृत्ति फिर एक बार प्रबल रूप से जाग पड़ी। उसने सोचा कि उसके पति-रूपधारी प्रेतात्मा ने उसकी तीन सौतों को निगल डाला है, तो उसे उन सौतों की हाय भरी आत्माओं की अज्ञात सहानुभूति का बल प्रदान करके उनका बदला चुकाना होगा

बहन भामा, तुमको रामेश्वरी के सम्बन्ध में मेरी बातें अवश्य ही शेखचिल्ली की कहानियों की तरह असम्भव और अस्वाभाविक लग रही होंगी'

तुम मन ही मन कहती होगी कि एक हिन्दू नारी चाहे वह कैसी ही अत्याचार पीड़िता क्यों न हो, किसी भी हालत में अपने पति से बदला लेने की बात नहीं सोच सकती ! पर बहन, तुम्हें याद रखना चाहिए कि "संसारोऽयमतीव विचित्रः !" इस विपुल विश्वमें, सभी कालमें, सभी देशोंमें ऐसी स्त्रियां वर्तमान रही हैं, जिनकी मनोवृत्तियाँ विचित्र परिस्थितियों के चक्कर के कारण लोगों को अत्यन्त रहस्यमयी तथा अस्वाभाविक सी मालूम हुई हैं हमारे देश में भी कभी इस प्रकार की स्त्रियों का अभाव नहीं रहा। "त्रिया चरित्र" सम्बन्धी नाना लोकोक्तियां इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं। मेरी बात का गलत अर्थ न करना। 'त्रिया चरित्र' का उल्लेख करके नारी-जाति पर छींटा कसने का उद्देश्य मेरा हरगिज़ नहीं है। बल्कि मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि जिन स्त्रियों पर हमारे यहां 'त्रिया चरित्र' का दोष आरोपित किया जाता है, उनमें से अधिकाँश ऐसी होती हैं, जिन्हें संसार ने कभी मनोविज्ञान की सहृदयता-पूर्ण अन्तर्दृष्टि से नहीं देखा है और पोंगा पन्थी नीति की कसौटी में कस कर अनन्त कालीन अविचार के बज्र-अभिशाप द्वारा उन्हें शप्त किया है। रामेश्वरी के सम्बन्ध में भी मैं यही बात कहना चाहती हूं। यह बात भी ध्यान में रखना कि रामेश्वरी के जीवन की बातें मैं उसी के मुंह से सुनकर अपनी शैली में तुम्हारे आगे व्यक्त कर रही हूं।

मैं कह रही थी कि कुछ समय तक नाना द्वन्द्वात्मक तथा द्विविधा पूर्ण विचारों के आलोड़न-विलोड़न के अनन्तर रामेश्वरी के मन में आत्मरक्षा की प्रवृत्ति प्रबलता से जाग उठी। वह अज्ञात प्रवृत्ति जब सरल पशुओं के अन्तर में भी जागरित हो उठती है, तो बड़े बड़े करिश्मे कर दिखाती है। रामेश्वरी के भीतर भी इतने बड़े बड़े चमत्कार दिखाने शुरू किये। उसके मन से भय की भावना एकदम तिरोहित हो गई और आत्म-विश्वास का भाव जाग पड़ा। अब वह पति की किसी भी आक्रोश पूर्ण बात से सहमत न थी। अपनी इच्छानुसार सब काम करती थी और पति की डाँट की तनिक भी परवा न करती

थी। जब दीक्षितजी असह्य क्रोध से उन्मत्त होकर उसे मारने दौड़ते, तो वह भी एक लकड़ी पकड़कर प्रत्याक्रमण के लिए तैयार हो जाती और कहती—"खबरदार! संभल के रहना! अगर ज़रा भी हाथ चलाया तो खैर न होगी। मुझे अपनी पिछली तीन स्त्रियों की तरह न समझना। तुमने भूत की तरह लगकर एक-एक करके तीनों को मारा है, अब मैं तुम पर भूत की तरह लगूंगी और ठिकाने से न रहे तो तुम्हें, तुम्हारे घर को और तुम्हारी सारी सम्पत्ति को खा जाऊंगी।"

जिस दिन दीक्षितजी ने प्रथम बार अपनी स्त्री के मुंह से इस प्रकार के वाक्य सुने, उस दिन दर-असल उनके होश-हवास उड़ गये और वह स्तब्ध होकर निःस्पन्द दृष्टि से उसे देखते रहे। फल यह हुआ कि उन्होंने हाथ चलाना और डाँटना-डपटना छोड़ दिया। क्रोध आने पर वह जी मसोस कर चुप रह जाते, पर अधम की तरह कोसना कलपना उन्होंने न छोड़ा। वह कहते—"अपने पति की आत्मा को तू इतना कष्ट दे रही है इसका फल अच्छा नहीं होगा। पति अन्धा, लंगड़ा, लूला, बूढ़ा कैसा ही हो, उसकी सेवा ही स्त्री का परम धर्म है, ऐसा हमारे शास्त्रों में कहा गया है। तू शास्त्रों का उल्लंघन कर रही है, इसलिए इसका नतीजा।" आदि-आदि।

इस पर रामेश्वरी कटुव्यंग के साथ कहती—"वाहरे दन्ती! (उसने दीक्षित जी के दो बहिर्गत दन्तों के कारण उनका यह उपनाम रख दिया था। इसके उच्चारण मात्र से उसका जला भुना कलेजा ठंढा हो जाता था।) इस प्रकार उपदेश बघारते हुए तुम्हें तनिक भी लाज नहीं मालूम होती! बूढ़े बाबा जब तीन—तीन पत्नियों को ब्रह्मदैत्य की तरह निगल-कर चौथी को लाये थे, तो क्या इसीलिए कि उसे भी भूखों मार कर सहज में चबा जायंगे? पर यह टेढ़ी खीर गले के नीचे उतरने की नहीं। याद रखना! वह लोहे के चने चबवाऊंगी कि नानी याद आ जायंगे। आये हैं बड़े सती-धर्म का

पाठ पढ़ाने ! थू पड़े ऐसे पति पर !" कह कर वह सचमुच थूक देती।

पर दीक्षित जी सहज ही चुप किये जाने वाले जीव न थे। यद्यपि हाथ खुजलाने पर भी हाथ चलाने का साहस अब उनमें नहीं रह गया था, तथापि मार्मिक वचन सुनाने से वह भी बाज़ न आते। कहते—"पूर्वजन्म के पापों से तुम इस जन्म में मेरे पाले पड़ी हो। मैं तो तब भी ब्राह्मण हूं, पर अब इस जन्म के पापों से अगले जन्म में न मालूम किस चमार से तुम्हारा पल्ला बंधेगा !"

पर मुंह से कुछ कहें दीक्षित जी अब वास्तव में पत्नी की प्रबल इच्छा शक्ति के आगे परास्त हो गये थे और यथा-शक्ति उसकी प्रत्येक इच्छा को पूरा करने की चेष्टा करते थे। पति-पत्नी में आपस में चख चख होती रहती थी, पर गिरस्ती का सब काम नियमित रूप से चलता जाता था। विश्वास करना कठिन होने पर भी यह बात सत्य है कि रामेश्वरी ने यथा-समय एक पुत्र सन्तान को जन्म दिया। लड़के की आकृति अविकल दीक्षित जी के अनुरूप थी। अन्तर केवल इतना ही था कि अभी पिता की तरह उसके मुंह से दो दांत बाहर को नहीं निकले, पर उपयुक्त समय में उनके भी निकलने की आशा थी। रामेश्वरी के अन्तःकरण से इस बच्चे के प्रति घृणा तथा स्नेह की दो प्रबल प्रवेगशील धाराएं समान रूप से बहने लगीं। पति का प्रति-रूप अपने पुत्र में पाने से उसकी चिर प्रेम तृषा से सन्तप्त आत्मा तृप्त न होकर और भी अधिक असन्तुष्ट हो उठी। पर दीक्षित जी तो मानो परमनिधि पा गये। उन्होंने उसका नाम रक्खा था कालिका प्रसाद और लाड़ से उसे 'कल्लू' कह कर पुकारते थे। एक तो सहज अपत्य-स्नेह तिसपर उसके प्रति पत्नी की उदासीनता ने उन्हें उसकी ओर और भी अधिक आकर्षित कर दिया। वह दिन और रात उसकी सेवा में रत रह कर, उसके पास बैठ कर, उसे गोद में लेकर, उसकी अपने अनुरूप छबि निहार कर परम पुलकित रहने लगे। जब

बाहर कहीं काम से जाते, तो पुत्रकी विछोह वेदना से अन्यमनस्क से रहते। यदि सच पूछो तो उन्हीं ने उसे तीन वर्ष पाल-पोस कर जीवित रखा। नहीं तो माता की उदासीनता उसे साल भर भी जीने न देती। वह उसे अपने हाथ से दूध पिलाते, अपने हाथ से नहलाते, अपने हाथ से कपड़े पहनाते, उसकी विस्मित घूर्णित आंखों की ओर एक टक निहार कर पुलक-विह्वल होकर उसका मुंह चूमते। जब वह तुतला कर बोलना सीख गया और "बाबू दी, हमाले लिए मलाई लाओ" कहने लगा, तो दीक्षित जी की आत्मा में आनन्द, उन्माद-गति से तरंगित होने लगा। वह उसके लिए नित्य नई नई चीजें लाकर उसे खिलाते थे। इस सम्बन्ध में उनकी कृपणता लज्जित होकर अपना मुंह छिपा लेती थी। दीक्षित जी ने मितव्ययिता की प्रेरणा से अपनी जिह्वाको जिस हद तक संयत रक्खा था, कल्लू उसी परिणाम में चटोर और रस-लिप्स हो उठा। रामेश्वरी को उसका यह चटोरापन विल्कुल अच्छा न लगता था, और वह भरसक उसे भोज्य-पदार्थों से बचाये रखने की चेष्टा करती। वह कहती—"लड़के को अभी से चटोरा बना कर पीछे मेरी ही तरह भूखों मारने का विचार है क्या?"

दीक्षितजी कहते—"तेरे बापके घर से चोरी करके तो उसे नहीं खिला रहा हूं। मैं अपने बेटे को कुछ भी खिलाऊं, इससे तुझे क्या!"

कल्लू अपनी मां से बहुत डरता था, अपने पशु-संस्कार से वह शायद समझ गया था कि उसकी मां केवल बाहरी तौर से नहीं, बल्कि अपने अन्तःकरण से उसे घृणा करती है। वह घड़ी-घड़ी अपने बाबू जी से शिकायत करता रहता—"मां बली तलाब है!" दीक्षितजी सहमति प्रकट करते हुये उसका मुँह चूमते। जब दीक्षितजी और रामेश्वरी के बीच बातों की गर्मा-गर्मी होने लगती, तो वह दीक्षितजी का पक्ष लेकर अपनी मां की ओर हाथ को झटक कर कहता—"मालूंगा।"

पर अत्यधिक रस-लिप्सा के कारण कल्लू पेट की बीमारी से पीड़ित रहता, और वह बीमारी बढ़ते-बढ़ते एक दिन उत्कट अतिसार के रूप में परिणत हो गई, जो उसके प्राण लेकर ही शान्त हुई। दीक्षितजी सिर पीट कर और धाड़ें मार-कर रोने लगे। रामेश्वरी भी रोई, पर अधिक नहीं। पुत्र-शोक और पत्नी की घृणा से निःशक्त होकर दीक्षितजी पस्त पड़ गये। दिन-दिन उनका स्वास्थ्य तेज़ी के साथ गिरता चला गया। अन्त को एक दिन उन्हें बड़े ज़ोर से रक्त-वमन हुआ. और वह रोग उन्हें कुछ ही दिनों के भीतर-धराधाम से ले गया। इसी प्रकार पुत्र की मृत्यु के प्रायः ६ महीने बाद उन्होंने भी उसका अनुसरण किया।

हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि वह प्रायः तीन लाख रुपया सचल और अचल सम्पत्ति के रूप में छोड़ गये। रामेश्वरी इस सम्पत्ति की एकमात्र उत्तराधिकारिणी थी। वह मायके चली गई। मैंने तब उसे देखा था। उसकी आकृति ही बिल्कुल बदल गई। मुंह सूखा हुआ था, और आँखों में एक विचित्र विभ्रान्ति का भाव दिखाई देता था। पर पति और पुत्र की याद दिलाये जाने पर वह बिल्कुल रोती न थी, केवल एक उन्मन, अर्द्धचेतन सा भाव उसके मुंह पर थोड़ी-सी कालिमा ला देता था।

धन सम्पत्ति का सारा प्रबन्ध उसने अपने चाचा को सौंप दिया। कभी आवश्यकता पड़ने पर वह बीच-बीचमें तीस, चालीस और ज्यादा से ज्यादा पचास रूपया मँगा लेती थी। पर उसने देखा कि इस हिसाब से उसे तीन लाख की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होने का अनुभव किसी अंश में भी नहीं होता। ग़रीब घर की लड़की कंजूस पति को व्याही गई थी। अपनी साधारण आवश्यकताओंके अतिरिक्त और किन-किन मदों में रूपया खर्च किया जा सकता है, यह वह नहीं जानती थी। फिर भी अपनी आकस्मिक धनाढ्यता का अनुभव वह उसी रूप में करना चाहती थी, जिस प्रकार नवीना माता अपने

बच्चे को गोद में लेकर अपने मातृत्व की पूर्णता का अनुभव करना चाहती है। एक दिन उसने आकस्मात अपने चाचा से अनुरोध किया कि उसके लिए दो हजार रूपये बैंक से ले आवें, साथ ही यह भी कहा कि नोट एक भी न हो, सब चांदी के ही रूपये हों। उसके चाचा ने बेकार इतने रूपयों को एक साथ मंगाने की मूर्खता पर बहुत कुछ कहा. पर उसने एक न सुनी और कहा—"अगर तुम नहीं लाना चाहते, तो मैं स्वयं जाकर ले आऊंगी—" लाचार चाचा जी ने चेक में सही करवाके दो हजार रूपयों की दो थैलियां लाकर उसके सामने रख दीं। रामेश्वरी ने उन्हें स्वयं गिनने की इच्छा प्रकट की। इसलिए नहीं कि चाचा जी पर उसे अविश्वास था, बल्कि कौतूहल-वश अपने हाथों से उन रूपयों को वह स्पर्श करना चाहती थी।

फर्श पर एक चादर बिछा कर उसके चाचा ने दोनों थैलियां खाली करके जब उसके सामने रूपयों का ढेर लगा दिया, तो वह बहुत देर तक विस्फारित नेत्रों से एकटक उन रूपयों की ओर ताकती रह गई, जैसे किसी ने, 'हिप्नोटाइज़' कर दिया हो। बस, उसी समय से वह उन्माद ग्रस्त हो उठी। स्थिर दृष्टि से देखते-देखते जब उसकी आँखे पथराने लगीं, तो उसने एक विचित्र विभ्रान्त मुस्कान से एकबार अपने चाचा की ओर और एकबार रूपयों की ओर देखते हुए कहा—"यह सब मेरे हैं? चाचा, सच कहो इतने सब रूपये क्या मेरे हैं? और किसी के नहीं? सब मेरे?"

चाचा ने कहा—"हाँ-बेटी, यह सब तेरे हैं।"

वह उत्तेजित होकर बोली—"तब तुम सब लोग यहाँ क्यों खड़े हो? यहाँ भीड़ क्यों लगा रखी है। जाओ, जाओ, सब यहाँ से जाओ। मैं किसी को एक पाई न दूंगी। ना, ना जाओ! तुम सब मुझे लूटना चाहते हो।"

यह कह कर उसने हाथ से धक्का देकर सब लोगों को हटा दिया। उसके बाद वह दोनों मुट्ठियो से रूपयों को पकड़कर खन-खन करके फिर उसी ढेर

के ऊपर डालने लगी। बहुत देर तक वह ऐसा ही करती रही। इसके बाद शंकित दृष्टि से इधर-उधर देख कर उसने थैलियों में रुपयों को भरना शुरू कर दिया। भरने के बाद डोरे से बाँध कर दोनों थैलियों को—एक एक करके बड़ी मुश्किल से उठाकर अपने पलँग पर ले गई। सिरहाने में उन्हे रख कर वह कमरा बन्द करके लेट गई। थोड़ी देर बाद फिर उन्हें खोलकर फिर गिनने लगी। फिर थैलियों में भरकर फिर लेट गई।

तब से बराबर उसका यही कार्य-चक्र जारी है। थैलियों को खोलती है और थोड़ी देर तक अपने मस्तिष्क के निराले गणित के अनुसार रुपयों को गिन कर फिर बन्द करके रख देती है। फिर खोलती है, फिर गिनती है, फिर बन्द कर देती है। अक्सर उसे इस प्रकार बड़-बड़ाते हुए सुना जाता है—"क्या देखते हो? रुपयों में हाथ लगाया तो इन्हीं रुपयों से दोनों दाँतों को तोड़ दूँगी! इनमें अब तुम्हारा कोई हक़ नहीं है। यह मेरे हैं!"

बहन भामा, रामेश्वरी की कथा पढ़ कर तुम्हें भी अवश्य ही दुख होगा। कौन जानता था कि बचपन में हमारे दल की वही नेत्री, जिसका रोब-दाब देखकर हम सब थर्राया करती थीं, उसका अन्त में यह हाल होगा! नियति की लीला विचित्र है। अपनी कुशल समय-समय पर देते रहना।

तुम्हारी चिर-परिचिता—विमला

प्रेतात्मा

शाहजहाँपुर से प्रायः सोलह-सत्रह मील की दूरी पर एक छोटी सी रियासत है। इतनी छोटी कि उसे रियासत नहीं, बल्कि जमींदारी कहना ही उचित होगा। प्रायः पन्द्रह वर्ष पहले की बात है। मैं अपने एक मित्र की सिफ़-रिश से वहां हेडमास्टरी के पद पर नियुक्त होकर गया हुआ था। जिस स्कूल में मेरी नियुक्ति हुई थी वहां आठवें दर्जे तक की पढ़ाई होती थी। वेतन भी उसी के अनुरूप था—अर्थात् साठ रुपया प्रति मास! मेरी आर्थिक स्थिति उस समय घोर संकटमय थी। इसीलिये मैंने इस नियुक्ति से अपने को परम धन्य माना और नियुक्ति पत्र पाते ही मैंने बिना विलम्ब के उसी दिन शाम को शाहजहाँपुर की गाड़ी पकड़ी। प्रायः दो बजे रात शाहजहाँपुर पहुँचा। रात भर प्लेटफार्म पर पड़ा रहा। सवेरे बस में सवार होकर यथा समय गन्तव्य स्थान पर पहुँचा। पहुँचते ही प्राइवेट सेक्रेटरी पण्डित रामदयाल दीक्षित से मिला। दीक्षितजी ने अपना एक आदमी बुलाकर मुझे लक्ष्य करते हुये उससे कहा—"आपको राम बागवाली कोठी में ले जाओ, आप वहीं रहेंगे। नौकर का प्रबन्ध भी आपके लिये कर देना।"

मालूम हुआ रामबाग वाली कोठी प्राइवेट सेक्रेटरी साहब की कोठी से प्रायः दो कोस की दूरी पर है। एक इक्का मंगवाया गया। युक्तप्रान्त के छोटे शहरों तथा कस्बों में जिन लोगों को इक्के पर सवार होने का सौभाग्य

प्राप्त नहीं हुआ, उन लोगों को समझाया नहीं जा सकता कि यह सवारी कौन सी आफ़त है। मरियल घोड़ा, रबर-टायर-रहित कितने ही पुश्तों के कीचड़ से परिपुष्ट काष्ठ-चक्र और आदि-मध्यान्त-रहित, दशाहीन, गद्दे से पूरित, टूटा काठ का ढांचा। इन अमूल्य उपकरणों से युक्त यह सवारी एक अपूर्व दर्शनीय वस्तु होती है। प्राइवेट सेक्रेटरी साहब के आदमी ने (जो खद्दरधारी थे, किन्तु पक्के दरदवारी जान पड़ते थे) मुझ पर कृपा करके इसी प्रकार की एक सवारी का प्रबन्ध किया। दोनों उसपर सवार होकर राम बाग की ओर चले। घोड़े की सब हड्डियां बाहर निकली हुई थीं, जो एक एक करके गिनी जा सकती थीं। पीठ की चमड़ी स्थान-स्थान पर चाबुक के मार के कारण छिली हुई थी। नितम्ब प्रदेश के दोनों ओर ताज़े घाव वर्तमान थे, जिन पर मक्खियां बैठ रही थीं। घोड़ा बार-बार परेशान होकर पूंछ से उन्हें उड़ाता था। वे भिनक कर एक बार हमारे नाक मुंह छूकर फिर उड़कर तत्काल उन्हीं घावों पर बैठ जाती थीं, फिर उड़कर हमारे मुंहों पर आती थीं। फिर घोड़े की पीठ के घावों का रसा-स्वादन करने लगती थीं। कच्ची सड़क पर इक्का चल रहा था। हिचकोलों का मज़ा लेते हुये हम लोग चले जाते थे। घोड़ा चल नहीं सकता था। खद्दरधारी सज्जन इक्के वाले को डाँट कर कहते थे कि तेज़ हांको, इक्के वाला निर्भय होकर उन्हीं घावों के ऊपर सपाट करके "चाबुक" (अर्थात् कांटदार सोंटा) चला रहा था पर घोड़ा निर्विकार उदासीनता के साथ अपनी ही साधारण गति में चला जाता था। ऐसा मालूम होता था जैसे उसके शरीर में वेदना की उस अनुभूति का लेश भी शेष नहीं रहा है, जो जीवित प्राणि-मात्र में वर्तमान होती है। जैसे उसका कंकालावशेष शरीर जीवित लोक के सुख-दुखों के अनुभव से एक दम परे होकर किसी प्रेतलोक में विचरण कर रहा हो!

रियासत का अतिथि होने पर भी कोई अच्छी सवारी मुझे न मिलकर ऐसा इक्का मिला, यह मेरे भाग्य का ही दोष था। निरतिशय खिन्न होकर मैं भी

मन में घोड़े की ही तरह निर्विकार भाव-लोक में विचरण करने की चेष्टा करने लगा। पर रियासत में प्रवेश करते ही नये जीवन का श्रीगणेश इस प्रकार होते देख कर मेरा मन भविष्य के अमंगल की अशंका से भयभीत हो उठा। मैं अन्ध विश्वासी नहीं हूं पर इस बार न जाने क्यों, किस अज्ञात आशंका से मैं घबरा उठा।

किसी तरह रामबाग़ की कोठी पर पहुंचा। बाग़ काफ़ी बड़ा था, पर दीर्घकाल से परित्यक्तावस्था में पड़ा था, ऐसा मालूम होता था। अब वह बाग़ न रह कर जंगल में परिणत हो गया था। इस जंगल के बीच में एक बहुत बड़ी कोठी प्रायः खण्डहर के रूप में पड़ी हुई थी। कमरे सभी बड़े बड़े थे। सभी दीवारों से पलस्तर गिर गया था और यत्रतत्र ईंटें भी खिसक गई थीं। स्थान स्थान पर छतों पर, कोनों पर मकड़ी के जाले तने हुये थे और छिपकलियां इधर उधर दौड़ रहीं थीं। सारा वातावरण ऐसा सूना था कि धीमी आवाज़ में बोलने पर भी प्रतिध्वनि कोठी के एक कोने से दूसरे कोने तक भयंकर रूप से गूंज उठती थी।

मेरे साथी ने बड़ी मधुरता से, आदर भरे शब्दों में मुझसे कहा—"आप यहीं रहिये, मैं वापस जाकर एक नौकर आपके लिये भेजता हूं! दो एक दिन बाद एक महाराज का प्रबन्ध भी आपके लिए हो जायगा। अभी आप बाज़ार से कुछ मंगवा कर खा लीजियेगा।"

मैं अपनी स्थिति देखकर ऐसा घबरा गया था कि एक शब्द भी मेरे मुंह से नहीं निकलना चाहता था। कुछ देर तक बुद्ध की तरह अपने साथी का मुंह ताकता रह गया। फिर कुछ स्थिर होकर मैंने कहा—"आप जाइए और नौकर को भेज दीजिए। एक चारपाई का प्रबन्ध भी कर दीजियेगा।"

"हां हां मैं अभी सब कुछ ठीक किये देता हूं। आप निश्चिन्त रहिये।" कह कर हज़रत चल दिये। मैं एकान्तपूर्वक होकर अपनी स्थिति पर गौर

करने लगा। सारी कोठी अपने सूनेपन से भायं भायं कर रही थी। कहीं कोई पुरानी कुर्सी, स्टूल या तख़्त नहीं था कि बैठकर जरा दम लेता! लाचार बाहर बरामदे में आकर अन्यमनस्क भाव से टहलने लगा। अकस्मात् अप्रत्याशित रूप से किसी सजीव प्राणी को इस दीर्घ परित्यक्त आवास में आते देख ताड़ खजूर, अर्जुन, नीम, इमली आदि पेड़ों के पक्षी त्रस्त भाव से फड़फड़ाने लगे। बन्दर भी घबड़ाकर इस पेड़ से उस पेड़ पर और उस पेड़ से इस पेड़ पर कूदने लगे।

प्रायः दो घण्टे बाद एक आदमी एक खटिया, एक मिट्टी का घड़ा, एक लोटा, एक गिलास और एक लालटेन लेकर आया। खटिया रखकर, घड़ा लेकर पास ही किसी कुएं से पानी भर लाया और बोला—"नहा लीजिए और बाज़ार से खाने को कुछ मंगाना हो तो पैसे दीजिए।" मालूम हुआ कि बाज़ार भी वहाँ से २ मील की दूरी पर है और वहां केवल दस-पांच दुकानें हैं। बिना किसी वाद-विवाद के मैंने कुछ पैसे निकाल कर उसे दे दिये और कपड़े उतार कर धोती-तौलिया निकाल कर पानी से काक-स्नान करके बांस और मूंज की बनी खटिया पर हताश अवस्था में चारों खाने चित्त लेट गया। पहले ही दिन से रियासतवालों का यह व्यवहार कि एक दिन के लिए भी मेरे भोजन का प्रबन्ध नहीं करना चाहते। यह सोच कर मैं विस्मित था। दीक्षितजी ब्राह्मण थे। मैं शौक से उनके यहां खा सकता था। इस जंगल के भीतर इस खंडहर के अलावा कोई मकान उन्हें मेरे काम के योग्य नहीं दिखाई दिया। एक खटियाके अतिरिक्त फ़र्नीचरके रूपमें और कोई चीज़ रखने योग्य उन्होंने मुझे नहीं समझा, पर मैंने निश्चय कर लिया कि निर्विवाद रूप से सारी स्थिति को स्वीकार कर लूंगा और किसी बात पर भी आपत्ति के रूप में एक शब्द भी मुंह से नहीं निकालूंगा।

बहुत देर बाद नौकर आया और पाव भर पूड़ी और घुइयां, भिण्डी, कुम्हड़ा आदि की पञ्च मेल और बरफ़ से भी ठण्डी तरकारी लाकर मेरे सामने रख

गया। घड़े में पानी भरकर वह चला गया। किसी तरह पेट पूजा कर बिस्तर बिछा कर लेट गया। रात से थका हुआ था। इसलिये तत्काल नींद आ गई। काफ़ी देर तक सोता रहा। शाम को वही खद्दर धार सज्जन, जिन्हें प्राइवेट सेक्रेटरी साहब ने मेरे साथ कर दिया था और जिनका नाम महादेवप्रसाद था, नौकर को साथ लेकर मेरे पास आये और बोले 'कहिये' आप को किसी बात का कष्ट तो नहीं है ? खाना तो लक्खन बाज़ार से ले ही आया होगा। चारपाई आप को मिल ही गयी है। घड़े में पानी भरकर ही दिया होगा। यदि और भी किसी बात का कष्ट हो तो कहिये, सब ठीक कर दिया जायगा।

मन-मन हंसते हुए मैंने कहा—"जी नहीं, मैं बड़े मज़े में हूं। सभी बातों का ठीक प्रबन्ध हो गया है, इसके लिये आपको धन्यवाद देता हूं।"

महादेव बाबू ने कहा—"कल आपकी सेवा में इक्का तयार रहेगा। इक्केवाला ठीक समय पर आपको स्कूल पहुंचा देगा। लक्खन रात को यहीं रहेगा और सुबह-शाम सब काम कर दिया करेगा।"

पर लक्खन ने रात को मेरे साथ रहने पर आपत्ति प्रकट की और कहा कि सुबह-शाम काम करके वह रात को चला जाया करेगा। महादेव बाबू ने कितना कहा, पर वह किसी तरह न माना। बहुत डराया-धमकाया, पर फिर भी वह राज़ी न हुआ। कारण पूछने पर पहले तो उसने कुछ न बताया, पर बहुत दबाव डाले जाने पर वह बोला—"बाबूजी, इस मकान में भूत रहता है।"

महादेव बाबू ने हंसकर कहा—"मूरख कहीं का! भूतों पर विश्वास करता है! मुझसे और भी बहुत-से आदमियों ने कहा है कि इस कोठी में भूत रहता है, न मालूम इन अंधविश्वासियों की बुद्धि क्या हो गई है। अरे पागल! भूत-वूत कुछ नहीं है, तुझे यहां रहना ही होगा।"

पर लक्खन ने एक न सुनी। बोला—"हुजूर, चाहे और जो कुछ कहें, करने को तैयार हूं, पर यहां रात को रहने को न कहें।"

अन्त में तंग आकर महादेव बाबू ने मुझसे कहा—"अच्छा, कोई बात नहीं। आज आप अकेले ही रहें, कल किसी आदमी के रहने का प्रबन्ध कर दिया जायगा। इस समय मैं जाता हूं। नमस्कार!"

उनके चले जाने पर लक्खन ने कहा—"बाज़ार से जल्दी खाना मंगा लीजिए, फिर मैं चला जाऊंगा।"

उसके बाज़ार चले जाने पर मैं स्तब्ध बैठा रहा। भूत के भय की कोई चिन्ता मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई, पर मैं अपने को एक अनोखी अस्वाभाविक परिस्थिति में पड़ा हुआ अनुभव कर रहा था। एक सिगरेट जलाई और अपने चारों ओर की विभ्रान्त विजनता पर विचार करने की चेष्टा करने लगा। अंधेरा होने लगा था। सामने ताड़ के पेड़ में एक पक्षी ने अकस्मात् ऐसे ज़ोरों से पंख फड़फड़ाये कि मैं संभल कर बैठ गया। कमरे के भीतर एक चमगीदड़ ने चक्कर काटना शुरू कर दिया। मैंने उसे भगाने की चेष्टा की, पर वह किसी तरह कमरे से बाहर जाना नहीं चाहता था। कुछ भयाभास सा अनुभव करने लगा, इसलिए लालटेन जला ली।

लक्खन आया और खाना रखकर चला गया। लक्खन के चले जाने पर अकारण मन में कुछ घबराहट-सी पैदा होने लगी! खिन्न मन में भय बरबस अपना अधिकार जमा लेता है। तथापि मैं सहज ही में भयभीत होनेवाला आदमी न था। पूड़ियाँ चबाते हुए अपने अकारण भ्रम पर खूब ज़ोरों से ठठा कर हंसा। रात की एकान्तिकता में उस निर्जन कोठी में 'हो: हो:' का शब्द सारी कोठी के भीतर ऐसे विकट रूप में गूंज उठा कि मेरा हृदय धड़कने लगा। मेरी हंसी प्रतिध्वनि के रूप में मानो मेरा ही प्रतिहास कर रही थी।

ऐसा जान पड़ने लगा कि वह मेरे हास्य की प्रतिध्वनि नहीं बल्कि किसी अज्ञात अदृश्य व्यक्ति का विकट अट्टहास है।

खा-पीकर, हाथ-मुंह धोकर एक सिगरेट जलाई और ऊपर को मुंह करके खटिया पर लेट गया। सिगरेट पीने पर चित्त कुछ स्वस्थ हुआ, और स्कूल में क्या करना होगा और मास्टरों से किस प्रकार की बातें करनी होंगी, इस सम्बन्ध में सोचने लगा। सोचते-सोचते आंखें झपने लगीं। दिन में सोने पर नींद जोर कर रही थी। सिगरेट फेंक कर बत्ती बुझा कर मैंने आंखें बन्द कर लीं। कुछ देर तक सोया हूंगा, अचानक एक बड़े ज़ोर की आवाज़ (जो मुझे ठीक तोप की सी मालूम हुई) सुनकर हड़बड़ा कर उठ बैठा। नींद में जो आवाज़ तोप के समान सुनाई दी, नींद उचटने पर अज्ञात स्मृति ने सुझाया कि वह टीन पर किसी भारी चीज़ के गिरने या टीन के ऊपर से नीचे गिरने का शब्द था। अनुमान लगाया कि कुत्ता या बिल्ली, किसी जानवर ने आकर किसी कमरे में पड़े हुए कनस्टर को गिराया होगा। अपने अकारण भय पर फिर एक बार मन-ही-मन हंसा। ज़ोर से हंसने का साहस न हुआ। बाहर झिल्लीं की अविरल झनकार और भीतर सन्नाटे के कारण भांय भांय के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। एक चमगीदड़ ने आकर मेरे सर के ऊपर मंडराना शुरू कर दिया। मैंने अपना मुंह कम्बल से ढांप लिया। आँखें फिर झपने लगीं और मैं सो गया। मुश्किल से बीस मिनट के लिए नींद आई होगी कि सहसा किसी ने जसे मुझे जगाया, ऐसा मालूम पड़ा। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मेरे मन के कानों ने किसी का श्रवणातीत आह्वान सुना हो और मैंने हड़बड़ा कर कम्बल मुंह पर से हटा लिया। उस विशाल कक्षके चारों ओर प्रगाढ़ अन्धकार दृढ़बद्ध होकर घनीभूत हो रहा था और कहीं कुछ दिखाई देने की सम्भावना नहीं थी। तथापि भास हुआ कि उस घनघोर तमिस्रपुंज से भी अधिक अन्धकारमयी एक विकराल छाया धीरे-धीरे

मेरी ओर आगे बढ़ रही है। मैंने देखा कि अपने रूखे-सूखे बालों को बिखराकर एक कंकालावशेष, क्लिष्ट-क्लान्त नारी-मुर्ति की भयावनी आकृति मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। पहले ही कह चुका हूं कि उस घटाटोप अन्धकार में चर्मचक्षुओं द्वारा कुछ देखना सम्भव नहीं था। पर मेरे मन की आंखें जैसे उस विभीषिकामयी छाया को स्पष्ट देख रही थीं। मैं यद्यपि ऐसी परिस्थिति में था जिसमें भ्रम हो सकता है, तथापि उस समय मैं निश्चित रूपसे उस बीभत्स छाया का कराल रूप देख रहा था, जो धोखा नहीं कहा जा सकता था। उस विभीषिकामयी छाया के मुख पर मैंने रोष-भरी घृणा, भयंकर प्रतिहिंसा, पर साथ ही निदारुण विषादपूर्ण दीनता के भाव की झलक पाई।

आश्चर्य की बात यह है कि ज्यों ही मेरे मन-चक्षुओं के आगे वह भयावना रूप प्रकट हुआ, त्यों ही बाहर पेड़ों पर बन्दरों के दो चार बच्चे एक साथ "चिहां-चिहां" कर के ठीक मनुष्य के बच्चों की तरह रोने लगे और दो-तीन कुत्ते भी ठीक मनुष्य के शब्द में "हो-ओं-ं-ं-ं" करके मर्मभेदी आर्तनाद कर उठे। मेरी सारी आत्मा एक निराले भय की व्याकुलता से थरथरा उठी! कुत्तों के मुंह से मानव-रोदन का अविकल प्रति शब्द मैंने अपने जीवन में उस दिन प्रथम बार सुना। कुत्तों के मुंह से निकलनेवाले नाना प्रकार के विचित्र शब्दों से मैं परिचित था, पर ठीक मनुष्यों के से हाहाकार का दीर्घ क्रन्दन कभी नहीं सुना था।

उस छायामयी करालिका नारी-मूर्ति को अपने सामने अनुभव करते ही मैंने तत्काल अपना मुंह ढांप लिया। पर मुंह ढांपना बेकार था, क्योंकि मनकी आंखों को किसी भी कम्बल से ढंका नहीं जा सकता था। बाहर कुत्तों का रोना जारी था। चमगीदड़ भी फड़फड़ाता हुआ कमरे के इस छोर से उड़कर उस छोर तक जाता था। और फिर उस छोर से उड़ कर इस छोर तक आता था। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि मैं एक भयावने लोकमें आ गया हूं

जहाँ की भूमि श्मशान-भूमि है, जहां का आकाश मृत्यु की गहन तामसी कुज्झटिका से घनाच्छन्न है और जहाँ के नाना रूपधारी जीव प्रेतयोनि से सम्बन्धित हैं।

मैं कम्बल के भीतर जीवन और मृत्यु के बीच की शब्दातीत तथा अबोधगम्य दशा में, हड़कम्प की हालत में थरथरा रहा था। सहसा कोठी से कुछ दूर किसी स्थान से कुछ कुत्तों को स्वाभाविक स्वर में "हू:हू" करके भूंकने का शब्द सुनाई दिया और इस शब्द के सुनते ही मुझे ऐसा बोध हुआ कि वह नारी—कंगाल की छाया-मूर्ति मेरे कमरे से बगलवाले कमरे की ओर चली गई और बगलवाले कमरे से दाहिनी ओर के कमरे में गई और वहां से बाहरवाले कमरे में जाकर शून्य में अदृश्य हो गई। कम्बल के भीतर हाथ—पाव समेट कर वज्रबद्ध अवस्था में आंख मूंदे पड़े रहने पर भी उस छाया—मूर्ति की गति-विधि का हाल इतने स्पष्टरूप से मुझे कैसे मालूम हुआ, इस सम्बन्ध में मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता। सम्भव है कि मेरे सूक्ष्म चेतन ने इन सब बातों को गौर से लक्ष्य किया हो।

कुत्तों का जो समूह स्वाभाविक स्वर में भूंक रहा था, उसके शब्द से मानव—स्वर में रोनेवाले कुत्तों का आर्तनाद बन्द हो गया। पर थोड़ी देर में प्रथमोक्त दल का स्वाभाविक चीत्कार थमते ही फिर द्वितीय दल का मानवी क्रन्दन शुरू हो गया और वह भयावनी छाया जिस रास्ते से अदृश्य हुई थी, उसी रास्ते से फिर आविर्भूत हो गई। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मेरे चारों ओर के वातावरण में दो शक्तियों का संघर्ष चल रहा है—एक मृत्यु का और दूसरा जीवन का। स्वाभाविक स्वर में भूंकनेवाले कुत्तों के शब्द से मुझे ढाढ़स मिलता था और उनके भूंकने पर वह प्रेत छाया अदृश्य हो जाती थी, और रोनेवाले कुत्तों के शब्द के साथ वह घृणामयी छाया

फिर उत्कट प्रतिहिंसा और साथ ही घोर दीनता का भाव लेकर प्रकट हो जाती। रात भर इस द्वन्द्वात्मक संघर्ष की खींचातानी मेरे प्राणों में चलती रहा। सुबह को जब दिशाएं खुलीं और पौ फटने लगी तो मैं पांव फैलाकर निश्चिन्त होकर लेट गया और कुछ ही समय बाद गाढ़ निन्द्रा में मग्न हो गया।

लक्खन ने आकर जब मुझे जगाया तो अंग—अंग में ऐसी शिथिलता का अनुभव कर रहा था कि मालूम होता था, ैसे किसी ने रात भर घूंसों से मुझे मारा हो। उठने की शक्ति नहीं रह गई थी. तथापि स्कूल की चिन्ता के कारण किसी तरह शक्ति बटोर कर उठा। लक्खन से मैं एक शब्द भी न बोला।

दाढ़ी बनाते समय शीशे में अपना मुँह देखा, एक दम सूखा हुआ था। बहुत दिनों तक लगातार ज्वर आने पर जो हाल चेहरे का हो जाता है, मेरे मुंह की वही दशा एक रात में हो गई थी।

खा-पीकर इक्के पर सवार होकर स्कूल की ओर चला। इक्का वही था, जिस पर पहले दिन सवार हो चुका था। दिन के उज्जवल प्रकाश में रात का वह भयंकरे अनुभव एक दुःस्वप्न की तरह लगता था। तथापि उत्कट घृणा तथा जघन्य प्रतिहिंसा की जिस मूर्तिमती छाया का रोमांचकर रूप मैंने देखा था वह अभी तक मेरे अन्तर्पट से विलीन नहीं हुई थी।

स्कूल पहुंचा। जो सज्जन अस्थायी रूप से हेडमास्टरी के पद को सम्हाले हुये थे, उनका नाम प्राणनाथ चतुर्वेदी था। उनकी आयु पचास वर्ष से कम न होगी। मालूम हुआ कि बहुत दिनों से सेकेण्ड मास्टर के पद पर नियुक्त थे। भूतपूर्व हेडमास्टर के चले जाने पर उन्हें अस्थायी रूप से उनके स्थान पर नियुक्त कर दिया गया था। अब मेरे आने पर वह फिर सेकेण्ड मास्टर होकर रहेंगे। चतुर्वेदी ने मुझे चार्ज सौंपकर मेरे जानने योग्य सब बातें मुझे बताईं।

नये हेडमास्टर के आगमन से स्कूल के छात्रों तथा मास्टरों में चंचलता तथा कौतूहल का जाग पड़ना स्वाभाविक था। छात्रगण मुझे देखकर आपस में कानाफूसी करने लगे थे। अवश्य ही मेरे व्यक्तित्व के सम्बन्ध में आलोचना प्रत्यालोचना कर रहे होंगे। पर मैं अपनी नयी स्थिति के प्रति एकदम उदासीन सा हो गया था। ऐसा मालूम होता था कि मैं किसी प्रेतलोक का निवासी आज मानव-लोक में आया हूं जहां का प्रत्येक निवासी मेरे लिये विजातीय है।

तीन बजे के क़रीब स्कूल में छुट्टी होने पर चतुर्वेदीजी मुझ से फिर मिले और अत्यन्त विनय के साथ उन्होंने मुझसे प्रश्न किया कि मैं कहां ठहरा हूं। यह सुनते ही कि रामबागवाली कोठी में मेरे रहने का प्रबन्ध किया गया है, चतुर्वेदीजी इस क़दर चौंक पड़े कि, यदि मैं कल रातवाली घटना से परिचित न होता तो मैं अवश्य ही चकित रह जाता। उन्होंने कहा—"तब क्या आप वहां एक रात रह चुके हैं ?"

"जी हां !"

"तो क्या वहां किसी प्रकार का कोई विशेष अनुभव आपको नहीं हुआ ?"

मैंने असली बात छिपाते हुये कहा—"कोठी एक तो ऐसे एकान्त स्थान पर है, जहां आस-पास में कहीं एक भी मानव-प्राणी के अस्तित्व का आभास मिलना कठिन हो जाता है, तिस पर मालूम होता है कि वह वर्षों से परित्यक्त अवस्था में पड़ी है। इन कारणों से वहां भय मालूम होना स्वाभाविक है।"

चतुर्वेदीजी ने अत्यन्त चिन्तित भाव से कहा—"देखिए साहब, मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप उस कोठी में अब एक दिन के लिये भी न रहें। केवल निर्जनता वहां के भय का कारण नहीं है, वहां भय उत्कट सत्य के रूप में वर्तमान है। वास्तव में वह स्थान प्रेतात्माओं से घिरा है।

बारह वर्ष पहले तक वहाँ किसी प्रकारका भय नहीं था और लोग शौक से वहाँ रहा करते थे। पर बारह वर्ष पूर्व जब से एक घटना वहां हो गई, तब से वहाँ प्रेतात्माओं का अड्डा बन गया। तब से जो-जो व्यक्ति कुछ समय के लिए वहाँ रहे हैं उनमें से केवल एक व्यक्ति को छोड़कर कोई भी जीवित न रहा। जो व्यक्ति वहां तीन-चार दिन रहने पर भी जीवित रहा उसने अपना जो कुछ अनुभव मुझे सुनाया वह वास्तव में लोमहर्षक था।"

स्कूल खाली हो गया था। केवल हम दो व्यक्ति वहां रह गये थे। आफ़िस के कमरे में हम दोनों बैठे हुए थे। चतुर्वेदीजी की बातों से मेरा कौतूहल बहुत बढ़ गया था। वह अपने मित्र का अनुभव मुझे सुनाने लगे। मेरे भय और आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुझे मालूम हुआ कि उनके और मेरे अनुभव में नाम को भी अन्तर नहीं है। अभी तक मैं अपने अनुभव को अपने मस्तिष्क का विकार और भ्रम समझने की चेष्टा करके अपने मनको समझा रहा था। पर अब मेरे लिए सन्देह की कोई गुंजाइश न रही और मैं विगत रात की छाया-मूर्ति की वास्तविकता की अनुभूति से काँप उठा। कुछ देर तक स्तब्ध रहकर मैंने कहा—"आप जिस विशेष घटना की बात कहते थे, उसका पूरा हाल क्या आप जानते हैं?"

चतुर्वेदीजी अपनी कुर्सी मेरी ओर सरकाकर ज़रा डटकर बैठ गये और बोले—"मैं प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से उस घटना के इतिहास से परिचित हूं। प्राय: पन्द्रह वर्ष पहले ठाकुर बलवीरसिंह नामक एक सज्जन यहाँ मैनेजर के पद पर नियुक्त होकर आये थे। उनके साथ उनकी माँ, पत्नी और एक विधवा बहन थी। उनकी पत्नी लक्ष्मी के साथ उनकी मां की नहीं बनती थी। दोनों में रात-दिन द्वन्द्व मचा रहता था। मुझे विश्वस्तनीय सूत्र से मालूम हुआ है कि लक्ष्मी जब पहलेपहल ससुराल आई थी तो वह बड़ी सुशील थी। सास के साथ बड़ी नम्रता और आदर के साथ बातें करती थी। पर सास का व्यवहार बहू के प्रति प्रारम्भ से ही विद्वेषात्मक हो उठा था।

आर्य-संस्कृति से पूर्ण इस पुण्य भारत-भूमि की मातृजाति में पति और पुत्र के प्रति जो महान् त्याग का भाव पाया जाता है वह स्वयंसिद्ध है, पर अभागिनी पुत्र-वधुओं के प्रति हमारी माताओं के अकारण आक्रोश का रहस्य समझना कठिन हैं। पुत्रों के विवाह के लिए वे कितनी उत्कण्ठित और उत्सुक रहती हैं, यह सभी जानते हैं। पर विवाह होने पर पुत्र-वधू के आगमन के क्षण से ही वह पारिवारिक जीवन को कैसा विषमय बना देती हैं, यह बात भी किसी से छिपी नहीं है। इस नियम में यत्र-तत्र अपवाद पाये जा सकते हैं, पर निश्चित है कि ठाकुर बलवीरसिंह की माता अपवाद-स्वरूप नहीं, बल्कि इस नियम के ज्वलन्त दृष्टान्त-स्वरूप थीं।

"लक्ष्मी की सास खाना स्वयं बनाती थी। उन दिनों ठाकुर साहब डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में वकालत करते थे। जहां वह वकालत करते थे वहां प्रतियोगिता बड़ी जबर्दस्त थी, और उनकी प्रेक्टिस कुछ विशेष चलती न थी। खैर। लक्ष्मी जब खाना खाने बैठती तो सास पहले दो पतले-पतले फुलके उसकी थाली में परोसकर रखती थी। दो फुलकों के समाप्त होने पर तीसरे के लिए पूछती—"और एक फुलका दूं?" लक्ष्मी उनके इस निराले ढंग से आश्चर्यचकित होकर किसी तरह संकोच त्यागकर सिर हिलाकर अपनी इच्छा प्रकट करती। चौथे फुलके के लिए भी वह किसी तरह संकोच का भाव दबा जाती थी, पर पांचवें के लिए उसे किसी प्रकार 'हां' कहने का साहस नहीं होता था और उसे यह भाव जताना पड़ता कि उसका पेट भर गया, यद्यपि पेट में चूहे कूदते रहते। चावल के सम्बन्ध में भी यही किस्सा दुहराया जाता था।

"प्रारम्भ में लक्ष्मी ने समझा कि सास अपने स्वभाव के भोलेपन के कारण ऐसा करती हैं, पर 'निज हित अनहित पशु पहिचाना।' प्रत्येक बात में सास के नीचतापूर्ण विद्वेष का व्यवहार देखकर धीरे-धीरे वह समझ गई कि उसकी वास्तविक स्थिति क्या है, यद्यपि उसके प्रति सास के इस अनोखे आचरण का कारण उसकी समझ में न आया। धीरे-धीरे लक्ष्मी के नम्र,

सुशील तथा संकोचशील स्वभाव में आश्चर्य-जनक परिवर्तन दिखाई देने लगा। उसके पति का व्यवहार उसके प्रति कुछ बुरा नहीं था, पर अपनी माता के विरुद्ध वह एक शब्द भी नहीं सुनना चाहते थे। लक्ष्मी के अज्ञात संस्कार ने उसे आत्म-रक्षा के लिए स्वयं तैयारियाँ करने के लिए प्रेरित किया। उसने प्रकट रूपसे पग-पग पर सास के अन्याय का विरोध करना शुरू कर दिया। वह जबर्दस्ती माँग-माँगकर खाया करती, जब तक कि उसका पेट पूरा भर न जाता। उसकी सास पड़ोस में ढिंढोरा पीटने लगी कि उनकी बहू क्या है राक्षसी है; अकेले इतना अन्न स्वाहा कर जाती है जितने में दस आदमियों का पेट भर जाय और उनका बेटा अधपेट खाकर ही कचहरी जाता है। लक्ष्मी के मन में इस प्रकार की बातों से प्रतिक्रिया बढ़ती ही गई और वह कटु शब्दों में सास की प्रत्येक बात का विरोध करती चली गई। धीरे-धीरे सास-बहू का पारस्परिक वैमनस्य इस हद तक बढ़ गया कि बीच-बीच में हाथा-पाई की भी नौबत आ जाती और कभी-कभी तो दोनों एक दूसरी के झोंटे पकड़-पकड़कर जूझने लगतीं।

"उन दिनों उसकी ननद विधवा नहीं हुई थी, और अपनी ससुराल में ही रहती थी। घर में केवल तीन प्राणी थे—लक्ष्मी, उसके पति और उसकी सास। ठाकुर साहब के कचहरी चले जाने पर नित्य सास-बहू के बीच द्वन्द्व मचा रहता और पास-पड़ोस के लोग बाहर से तमाशा देखते रहते। ठाकुर साहब के घर वापस आने पर उनकी माँ, बहू की शिकायत इस ढंग से करती थी कि ठाकुर साहब के मन में आतंक छा जाता और वह अपनी पत्नी को पीटने पर उतारू हो जाते। अपनी माँ के स्वभाव से वह भली भांति परिचित थे, तथापि स्वभावतः उनके मन में माता के प्रति अत्यन्त स्नेह और आदर का भाव वर्तमान था। वह चाहते थे कि मां का अत्याचार उनकी पत्नी पर चाहे किसी हद तक क्यों न हो, उसे नम्रतापूर्वक सब चुपचाप सहन करते जाना चाहिए।

"लक्ष्मी के मायकेवाले बहुत ग़रीब थे। फिर भी वे लोग बीच-बीच में उसे ले जाने के लिए जब किसी को भेजते थे तो लक्ष्मी जाने से साफ़ इनकार कर देती और मायके से आये हुए व्यक्ति को एक दिन के लिए उस घर में ठहरने न देती। उसके मन में इस बात की भारी आशंका थी कि वह एक बार के लिए भी मायके गई नहीं कि उसकी सास उसके विरुद्ध झूठ-मूठ का कलंक गढ़कर उसे त्याग देने के लिए उसके पति को वाध्य कर देगी।

"इस प्रकार छः वर्ष बीत गये। सास के साथ दिन-रात लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौज, थुक्कमथुक्का करते-करते वह इस सम्बन्ध में अभ्यस्त हो गई और वह उसका दैनिक कार्यक्रम सा हो गया। इसमें कोई अस्वाभाविकता परिवार के तीन प्राणियों में से किसी को भी नहीं मालूम होती थी। इस बीच उसकी ननद कौशल्या विधवा हो गई और छः महीने बाद मायके चली आई। कौशल्या के आने पर मां-बेटी का ज़ोर बढ़ गया। लक्ष्मी ने देखा कि उसकी ननद उसकी सास से कूटबुद्धि में कुछ कम नहीं है और शारीरिक बल और मानसिक उग्रता में परिवार के सब व्यक्तियों से बढ़कर है। फिर भी वह हारमान न हुई। कभी-कभी वाद-विवाद बढ़ जाने पर जब हाथा-पाई की नौबत आ जाती तो सास और ननद मिलकर दोनों ओर से उसे घेर लेती थीं। ननद इस तरफ़ से उसके झोंटे पकड़कर खींचती और सास उस तरफ़ से। लक्ष्मी छटपटाती, कराहती, गालियां देती, शाप उगलती, पर पार नहीं पाती थी। कभी-कभी ऐसा होता कि कौशल्या अकेली लक्ष्मी के दोनों हाथों को पकड़े रहती और सास पीछे से एक चप्पल लेकर पटापट उसके सिर पर पटकती हुई दांत पीसकर कहती—"ले! ले! ले! ले!" वह चिल्लाती, चीख़ मारती, दुष्ट बच्चों की तरह वाही-तबाही बकती, पर सब व्यर्थ। अन्त में सास-ननद की ही जीत होती थी। उसके सिर पर भूत की तरह एक ज़िद-सी सवार हो गई थी। वह सोचती कि जब भाग्य ने उसे ऐसे अस्वाभाविक परिवार में ऐसी क्रूर और निर्लज्ज-स्वभाव सास, और ननद के बीच में लाकर खड़ा कर दिया

है तो वह भी तब तक अस्वाभाविक ही बनी रहेगी जब तक पूरी, मनचाहा बदला न ले लेगी। कभी दही की मटकी उठाकर दोनों में से एक के सिर पर मार देती थी, कभी दूध की कढ़ाई सास के सर पर उण्डेल देती थी। दूध और दही के प्रति उसकी इस निर्ममता का एक कारण यह भी था कि इन दोनों गव्य पदार्थों में से एक भी उसके पति को नहीं मिलता था—शायद कभी क़सम खाने को थोड़ा,बहुत मिल जाता हो पर वह नहीं के बराबर था। और उसके अपने सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है। दूध, दही तो दर किनार, रोटी चावल उसे कभी एक दिन के लिए भी भरपेट प्राप्त न होता था।

"ठाकुरसाहब ज्यादातर बाहर ही रहते और सुबह के निकले आधी रात को वापस आकर चुपचाप अपने कमरे में जाकर लेट जाते। बियारी भी अक्सर बाहर ही करते थे। घर से विमुख होने पर भी वह बड़े मिलनसार, हँसमुख और सांसारिक तथा सामाजिक विषयों में बड़े निपुण थे। किसी तरह तिकड़म भिड़ाकर वह इस इस्टेट के मैनेजर बनकर सपरिवार यहाँ चले आये। भूतपूर्व मैनेजर की मृत्यु हो गई थी। पहले ही कह चुका हूं कि यहां आकर वह उसी कोठी में ठहरे, जहाँ आप ठहरे हैं।

"यहां आने पर लक्ष्मी ने एक लड़के को जन्म दिया। इसी अवसर पर हम लोग निमन्त्रण के उपलक्ष में प्रथम बार मैनेजर साहब से जाकर मिले। मेरी पत्नी ने भी इस अवसर पर लक्ष्मी और उसकी सास और ननद का व्यक्तिगत परिचय प्राप्त किया। तभी से लक्ष्मी के साथ मेरी पत्नी की घनिष्ठता हो गई। खैर! लड़का पैदा होते ही लक्ष्मी को ऐसा जान पड़ा जैसे उसका नारी जन्म सार्थक हो गया। परिस्थितियों की अस्वाभाविकता के कारण उसके स्वभाव में जो विकृति आ गई थी उसके कारण वह स्वयं ऐसा अनुभव करने लगी थी कि वह अपना नारित्व खो चुकी है। पर अब मातृत्व की अपूर्व अनुभूति के साथ ही उसका नारित्व फिर नये सिरे से जाग पड़ा। उसे अपने इतने वर्षों के वैवाहिक जीवन के कटु अनुभव एक दुःस्वप्न की

तरह असत्य से प्रतीत होने लगे और उसे अपने बचपन के वे दिन याद आये जब वह भविष्य के मंगलमय वैवाहिक जीवन की अत्यन्त अस्पष्ट और साथही अत्यन्त मधुर कल्पना का रंगीन जाल मन-ही-मन बुनते हुए अपनी सहेलियों के साथ गुड़ियों के खेल खेलती थी ।

"ठाकुर साहब को भी एक पुत्र पाकर कम प्रसन्नता नहीं हुई और सबसे अधिक प्रसन्नता उन्हें इस बात पर हुई कि लक्ष्मी के स्वभाव में वही मधुरता फिर से आने लगी थी, जो उन्होंने वैवाहिक जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में उसमें पाई थी । अब ठाकुर साहब भी पुत्रस्नेह से प्रेरित होकर लक्ष्मी के प्रति यथेष्ट स्नेह का भाव दिखाने लगे थे, जो उनकी माता और बहन के लिए एकदम असहनीय था । अब स्पष्ट और प्रकट रूप से बहू का अनिष्ट करने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता था । इसलिए भीतर-ही-भीतर दोनों का आक्रोश और भी अधिक बढ़ता जाता था । प्रकट रूप से कुछ न कर सकने पर भी अपने कूटचक्रों से दोनों बाज़ न आती थीं, पर लक्ष्मी अब आश्चर्य–जनक रूप से इन कुचक्रों के प्रति सुविनम्र अवज्ञा का भाव प्रदर्शित करने लगी थी ।

"विकृत-स्वभाव स्त्री–पुरुषों में प्रतिहिंसा का भाव किस सीमा तक घोर क्रूर तथा उग्र रूप धारण कर सकता है, इस बात की कल्पना प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता । बहू के प्रति विद्वेषभाव के कारण पुत्र और पोते की अनिष्ट कामना किसी स्त्री के मन में कभी उत्पन्न हो सकती है, इस बात पर विश्वास करना बहुत कठिन है । तथापि किसी कवि की यह बात माननी ही पड़ती है कि सत्य कभी-कभी कोरी कल्पना की अपेक्षा भी अधिक अविश्वासनीय जान पड़ने लगता है । लक्ष्मी की सास ने देखा कि उसकी शान्ति और सन्तोष का मूल कारण है उसका पुत्र । इसलिए उनके हृदय का सारा आक्रोश इस निरपराध निष्पाप नवजात शिशु के विरुद्ध फुफकार मचाने लगा । बच्चे के लिए शीर्ण देह और क्लिष्टप्राण माता का दूध पर्याप्त नहीं होता था, इसलिए उसे समय-समय पर गाय का दूध भी पिलाना पड़ता था । लक्ष्मी की सास इस दूध में

कभी क्विनाइन मिला देती, कभी गोल मिर्च पीस कर दूध उबालते समय उसमें डाल देती और छलनी से छान कर लक्ष्मी को उसे पिलाने के लिये दे देती। बच्चा दूध पीता और चिल्लाने लगता। कभी बच्चे के लए दूध एकदम न रहता—सास और ननद मिलकर सब स्वयं गटक जातीं। लक्ष्मी सास के करतबों से कितना ही परिचित हो, फिर भी इस हद तक सन्देह करने के लिऐ वह तैयार न थी कि वह अपने पोते का भी अनिष्ट चाहेगी। फिर भी वह यथासम्भव दूध स्वयं गरम करके बच्चे को पिलाती थी।

"एक दिन लक्ष्मी किसी काम में व्यस्त थी। बच्चा आनन्द से हिंडोले में लेटा हुआ अपने दोनों पांवों को हिलाता हुआ ऊपर की ओर मुंह करके न मालूम सृष्टि की किस अज्ञात रहस्यमयी लीला के रस से पुलकित होकर मधुर-मधुर मुसका रहा था और हर्ष की किलकारियां भर रहा था। इतने में लक्ष्मी की सास ने एक कटोरे में थोड़ा सा दूध और एक छोटा-सा चम्मच लेकर उस कमरे में प्रवेश किया। बच्चा उन्हें देखकर, बल्कि यह कहिए कि उनके हाथ में दूध का कटोरा देखकर, पांवों को और भी तेजी से हिलाकर और मुंह में उंगली डालकर हर्षध्वनि करने लगा। सास ने एक बार इधर-उधर झांककर उसे चम्मच से दूध पिलाना शुरू कर दिया। थोड़ी देर में लक्ष्मी वहां आई तो वह यह दृश्य देखकर चकित रह गई क्योंकि आज यह एकदम नयी बात थी। उसकी सास ने इसके पहले बच्चे को कभी अपने हाथ से दूध नहीं पिलाया था। उसने देखा कि दूध का रंग कुछ काला-सा है। लक्ष्मी को देखते ही सास ने सिटपिटा कर बचा हुआ दूध तत्काल गिरा दिया और वहां से चल दी। लक्ष्मी आशंका से घबरा उठी। कुछ ही समय बाद बच्चा वेदना से छटपटाने लगा और चीखने लगा। उसका मुंह अस्वाभाविक रूप से तमतमा उठा था और आंखें चढ़ आई थीं। धीरे-धीरे उसकी आंखें झपने लगीं और मुंद सी आई। लक्ष्मी ने उसके सर पर हाथ लगाया, मालूम होता था कि जलता हुआ तवा है। थोड़ी देर तक वह उसी हालत में निष्पन्द लेटा रहा,

फिर छटपटाता हुआ करवट बदलने की चेष्टा करने लगा, पर आंखें मुंदी ही रहीं। ठाकुर साहब उस समय घर पर नहीं थे। लक्ष्मी ने नौकर को भेजा कि ठाकुर साहब को और डॉक्टर को बुला लावे। नौकर नया था, उसे पता नहीं था कि कहां ठाकुर साहब मिलेंगे और कहां डॉक्टर। ठाकुर साहब दो घण्टे से पहले न आ सके, और डाक्टर जब आया तो बच्चा सदा के लिए आंखें मूँद चुका था।

"लक्ष्मी धरती पर पछाड़ खाकर धाड़ें मार-मारकर रोने लगी और सिमेण्ट पर ज़ोरों से बार-बार सर पटकती कहने लगी—हाय! मार डाला! हत्यारी ने मेरा बच्चा मार डाला। अब मैं क्या करूं! अब क्या होगा! हाय! बुढ़िया तूने मेरे लाड़ले को ज़हर पिला दिया।

"बुढ़िया उसी दम तमककर बोल उठी—'यह कुलबोरन मुझसे कहती है कि ज़हर पिला दिया! मुंह में कीड़े पड़ेंगे, कीड़े! हां, ऊपर से भगवान देखते हैं। तेरा लड़का था तो क्या वह मेरा पोता नहीं था! कितना दुलार करती थी, कैसे प्यार से उसके लिये दूध गरम किया करती थी! और यह नमकहराम मुझसे कहती है कि ज़हर पिला दिया! हाय भगवान्! तुम्हीं न्याय करना। हे धरती! तुम्हीं बिचार करना!'—कहकर वह धरती पर सिर रखकर रोने लगी।

"कौशल्या ने कहा—'भला देखो! अपने पोते के लिए कभी कोई ऐसा कर सकता है। ऐसी बात मुंह से निकालते हुए इस सत्यानासी की जीभ जल नहीं जाती!'

"पर लक्ष्मी किसी की बात का कोई जवाब न देकर बिलख-बिलखकर कहती जाती थी—'हाय बुढ़िया! तेरा कभी भला न हो! तेरा सत्यानाश हो! इस अनर्थ का फल तुझे इसी जन्म में मिले।' इत्यादि-इत्यादि।

"अन्त में बुढ़िया रह न सकी। 'अच्छा तू ऐसा कहती है?' कहकर उसने पुत्र-शोक से विह्वल उस आर्त नारी के सिर के बाल पकड़ कर उसे बेरहमी

से पीटना शुरू कर दिया। ठाकुर साहब पास ही खड़े थे। यह अन्धेर वह देख न सके। आज जीवन में प्रथम बार उन्होंने अपनी माता का विरोध करते हुए उसका हाथ थाम कर कहा—'बस हो गया! अन्याय और अत्याचार की हद हो गई!'

"बुढ़िया कुछ देर तक स्तम्भित-सी होकर पुत्र का मुंह ताकती रह गई। फिर कहने लगी—'बहू का क्या कसूर, जब बेटा ही नालायक हो गया! कलजुग है, कलजुग!' इसके बाद ठाकुर साहब फिर कुछ न बोले। अपने आचरण पर उन्हें लज्जा-सी होने लगी थी।

"तब से लक्ष्मी अधपगली-सी हो गई। घर का काम-धंधा उसने एकदम छोड़ दिया। हर वक्त बड़बड़ाती और झीखती रहती, मौके-बेमौके सास-ननद से झपट पड़ती और मार खाती रहती। उसके सिर के बाल चौबीसों घण्टे बिखरे पड़े रहते। न उन्हें वह धोती, न कभी तेल लगाती और न कंघी-चोटी करती बदन के कपड़े भी उसके मैले रहते। उन्हें वह कभी न धोती थी, न बदलती थी। उसने नहाना-धोना भी छोड़ दिया था। बच्चे के जन्म से ही उसका शरीर अस्वस्थ होने लगा था। अब उसे खाँसी और ज्वर ने भी आ घेरा। फिर भी भूख उसकी बिलकुल कम न हुई, पर भरपेट भोजन उसे कभी नहीं मिलता था और तरस कर रह जाती थी। वह लड़ती, झगड़ती, चिल्लाती कि उसे भूख लगी है, उसे इच्छा भर खाने को मिले। पर दो-एक रूखी-सूखी रोटियों के सिवा उसे कुछ भी नहीं दिया जाता था। ठाकुर साहब अब मां, बहिन और पत्नी तीनों के प्रति उदासीन हो गये थे—उनकी तरफ़ से कोई मरे चाहे कोई बचे। मेरी पत्नी अक्सर ठाकुर साहब के यहाँ आया-जाया करती थी। वह चोरी-छिपे, अंगूर, मुनक्के, साबूदाने के पापड़ आदि ले जाकर लक्ष्मी को दे दिया करती थी। लक्ष्मी उन चीज़ों पर ऐसा झपट्टा मारती जैसे कोई भूखा भेड़िया अपने शिकार पर झपटता है, और उसी दम खाना शुरू कर देती। खा-पीकर, कुछ तृप्त होकर, मेरी पत्नी

के साथ लक्ष्मी जब बातें करती तो उस समय उसके मुख में जो सहज मधुर भाव और सरल स्नेह की सहृदयता झलकती उसे देखते हुए यह अनुमान लगाना असम्भव हो जाता था कि वह अपनी सास और ननद के साथ उग्रता से लड़ती-झगड़ती होगी। मेरा तो यह विश्वास है कि उसका स्वभाव मूलतः कुछ बुरा नहीं था, पर परिस्थितियों ने उसके हृदय में कटुता का विष घोल दिया था।

"उसका रोग बढ़ता चला गया और उसका शरीर शीर्ण से शीर्णतर होता गया। अन्त में यह नौबत आई कि वह बिस्तर पर से उठने के योग्य न रही। उसकी सास और ननद इस हालत में भी उसकी परिचर्या करना उचित नहीं समझती थीं और सिर्फ़ दो-एक बार उसके पास जाती थीं, और जब जातीं तो कुछ जली-कटी सुना आतीं। वह उस अधमरी हालत में भी चीख़ मारकर कहती—'मैं मर रही हूं, मुझे दूध दो या कुछ खाने को दो!' पर वहाँ कौन सुनता था! ठाकुर साहब जब स्वयं दूध गरम कर पाते तो थोड़ा-सा उसे मिल जाता, वर्ना तरस कर रह जाना पड़ता। फिर भी ठाकुर साहब अकेले ही यथासम्भव उसकी परिचर्या करते थे।

"सभी जानते हैं कि क्षयरोग के रोगी अन्त तक बदहवास नहीं होते। जिस दिन उसकी मृत्यु हुई उस दिन सुबह से ही वह अपने को और दिनों की अपेक्षा चंगी मालूम कर रही थी, यहाँ तक कि उसे विश्वास होने लगा था कि अब वह अच्छी होने लग जायगी। मेरी पत्नी का ऐसा अनुमान है कि घोर कष्टकर और निरानन्दमय जीवन बिताने पर भी उसे मरने की इच्छा कभी एक दिन के लिए भी नहीं हुई! कारण सम्भवतः यही था कि उसकी बीमारी की हालत में अपने पुत्र की हत्याकारिणी के विरुद्ध प्रतिहिंसा की आग भयंकर रूप से जाग पड़ी थी। खैर। मैं पहले ही कह चुका हूं कि मृत्यु के दिन सुबह से ही वह स्वस्थता का अनुभव करने लगी थी। उसने अपने पति से कहा भी कि मैं अब अच्छी हो जाऊंगी। यहां तक कि वह थोड़ी देर के

लिए उठकर बैठी भी। उस दिन मैं अपनी पत्नी को साथ लेकर वहीं गया हुआ था। अकस्मात् ऐसा मालूम हुआ कि वह सारे शरीर में एक असाधारण और अभूतपूर्व दुर्बलता का अनुभव करने लगी है। उसके हाथ-पाँव से टूट जाते थे। वह परास्त होकर बिस्तर पर चित लेट गई। थोड़ी देर में उसका ऊर्द्ध श्वास चलने लगा। उसकी बोलने की शक्ति स्पष्ट ही एकदम तिरोहित हो गई। विवश व्याकुल आंखों से वह हम लोगों की ओर देखती हुई केवल 'उंह! उंह!' का अत्यन्त क्षीण शब्द मुंह से निकाल रही थी। कमरे में मृत्यु का सन्नाटा छाया हुआ था और सब लोग स्तब्ध खड़े थे। एक आदमी डाक्टर को बुलाने के लिए भेज दिया गया था। उसकी सास भी वहीं पर आ गई थीं। इतने दिनों के बाद अन्त में सदा के लिए बहू से छुटकारा पाने की निश्चित आशा से उसके मुख में हर्ष का उल्लास समाता नहीं था, जो दर्शकों को अत्यन्त भयावह और विरक्त लगता था। लक्ष्मी निरतिशय विवशता की चरम म्लान दृष्टि से सास की ओर देख रही थी। सहसा मृत्यु की उस भीषण जड़ निस्तब्धता को अत्यन्त बीभत्स रूप से भंग करती हुई बुढ़िया मरणासन्न बहू को लक्ष्य करके अत्यन्त विकृत स्वर में बोल उठी—अब क्या देखती है? अब तू मेरा कुछ नहीं कर सकती! देती क्यों नहीं अब गाली? अभागिनी, अपने कुकर्मों का फल भोगने के लिए अब तू नरक को जा रही है। यमदूत अभी आते ही होंगे।

"सब लोग आतंकित और भयभीत होकर पिशाचिनी बुढ़िया की ओर देखने लगे। पर बुढ़िया बहू की ओर टकटकी लगाए खड़ी थी मैंने स्पष्ट देखा कि बुढ़िया की निर्मम कटूक्ति सुनकर लक्ष्मी ने ऐसी विकृत और उत्कट घृणा और विकट हिंसा की दृष्टि से बुढ़िया की ओर ताका कि वह शायद जीवन में प्रथम बार आतंक की अनुभूति से दहल उठी। इसके दूसरे क्षण बाद लक्ष्मी की श्वास-क्रिया सदा के लिए बन्द हो गई।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद बुढ़िया पागल हो गई। उसकी बातों से लोगों को यह विश्वास हो गया कि बहू की प्रेतात्मा ने उसे निर्ममता के साथ धर दबाया है। उसके पागलपन ने बीभत्स रूप धारण कर लिया। स्वयं छः मास तक घोर कष्टकर रोग की असह्य यन्त्रणा झेलने के बाद अन्त में अत्यन्त घृणित तथा गलित अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद लक्ष्मी की ननद कौशल्या का सारा शरीर किसी विकृत रोग से सड़ने गलने लगा और एक वर्ष के बाद वह भी अत्यन्त दुर्दशा को प्राप्त होकर चल बसी। ठाकुर साहब इस्तीफ़ा देकर यहां से कहीं चले गये और अज्ञातवास करने लगे।

"तब से जो कोई भी व्यक्ति इस कोठी में कुछ समय के लिए रहा वह जीवित नहीं रहा—सिर्फ़ एक व्यक्ति को छोड़कर, जिनका उल्लेख मैं पहले ही कर चुका हूँ।

सूर्य पश्चिम की ओर ढल गया था। मैं स्तब्ध होकर चतुर्वेदीजी द्वारा वर्णित रोमाञ्चकर वृत्तान्त सुन रहा था। जब वह क़िस्सा ख़तम कर चुके तो मेरा यह हाल था कि गला बिलकुल सूख जाने के कारण मुंह से एक शब्द निकालने की शक्ति नहीं रह गई थी।

चतुर्वेदीजी ने कहा—"इसीलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि अब आप एक क्षण के लिए भी उस कोठी में न रहें और अगर अभी किसी दूसरे मकान में आपके रहने का प्रबन्ध नहीं हो पाता तो मेरे ही साथ आकर रहें, बल्कि अभी सीधे मेरे साथ चलें। आपका सामान पीछे मंगा लिया जायगा।"

मुझे भी अब उस कोठी में वापस जाने का साहस बिलकुल नहीं होता था। इसलिए बिना किसी तर्क के चतुर्वेदीजी के साथ हो लिया।

हमारे हिन्दी-प्रकाशन

प्रकाशित

१ **निशानियां** : (प्रेम-कहानियां) लेखक : **उपेन्द्रनाथ अश्क**; सफे १७४ कीमत २||= रु.

२. **हमारी रोटी की समस्या** : (खाद्य और किसानों की बुनियादी समस्याओं पर विचार) लेखक : **डॉ. जगदीशचंद्र जैन**; सफे ५२ कीमत १२ आने.

३. **रोज़ा लुक्ज़ेम्बुर्ग** : (लेनिन के समकालीन जर्मनी की श्रेष्ठतम् समाजवादी महिला 'रोजा लुक्जेम्बुर्ग' का जीवन—चरित्र और उनकी समाजवादी विचार—धारा) लेखक : **श्री रामवृक्ष बेनीपुरी**; भूमिका : **जयप्रकाश नारायण**; सफे १६४; कीमत ३। रु.

४. **स्रोतस्विनी** : (पद्य-संग्रह) लेखक : **अंबिका प्रसाद वर्मा, 'दिव्य'**, भूमिका: **बनारसीदास चतुर्वेदी**; सफे १०६; कीमत. १।।। रु.

५. **आज़ाद वतन** : (१६४२ में ज़ब्त हुए राष्ट्रीय गाने,) लेखक : **सैयद कासिम अली**, भूमिका : **रफ़ी अहमद किदवई**, यातायात मंत्री, भारत—सरकार; सफे ६६; कीमत १। रु.

सप्त-किरण : (सात एकांकी) लेखक: डॉ. **रामकुमार वर्मा**, सफे १७६. कीमत ३ रु.

७. **पठान** : लेखक **गनी खान**, अनुवादक : **उपेंद्रनाथ अश्क**, कीमत ३ रु.